वेदों आदि में
मिलावट की गंभीर समस्या

विधुशेखर त्रिवेदी

वैदिक धर्म की रक्षा हेतु

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान एवं

पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ,

6B वृन्दावन लखनऊ, 226029

द्वारा प्रकाशित

मुद्रक– श्री विनायक, लखनऊ

2022 प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

मूल्य–40.00

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S
(अ.प्रा)

ओ३म्

पूज्य पिता

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्नेहमयी पूज्या माँ

स्व. श्रीमती चम्पादेवी त्रिवेदी

तथा

प्राणों के समान प्रिय अपनी

धर्म पत्नी

श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

विधुशेखर त्रिवेदी

9453849042

श्री विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ.प्रा)
अध्यक्ष
श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान

पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ, सेक्टर 6B,
वृन्दावन, रायबरेली रोड,
लखनऊ (उ.प्र) 226029

विजय दशमी,
दिनांक– 5.10.2022

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः

जीवन के अवसान काल (92 वर्ष के अन्तिम भाग) में केवल वैदिक धर्म से सम्बन्धित इस पुस्तिका के प्रकाशन से मेरा उद्देश्य, न तो किसी की भावनाओं को ठेस पहुँचाना, न किसी को नीचा दिखाना और न किसी का अपमान करना है।

इसका एक मात्र लक्ष्य वेदों, विशेष रूप से शुक्ल यजुर्वेद, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों आदि श्रेष्ठ धर्मग्रथों में की गयी मिलावट तथा गन्दगी को हटाकर उन्हें शुद्ध रूप में प्रकाशित करवा कर वैदिक धर्म की रक्षा करना है। इसके लिये सभी श्रेष्ठ विद्वानों के सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है।

अस्तु आदरणीय प्रधानमन्त्री जी,मा. शिक्षा मन्त्री भारत सरकार, प्रदेशों के मा. मुख्यमन्त्री गण, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर संचालक, देश का हित चाहने वाले वरिष्ठ राज नेताओं, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद एवं

संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष एवं सचिव तथा आदरणीय शंकराचार्यों, सभी विद्वानों, धार्मिक संस्थानों के प्रमुखों एवं विश्व विद्यालयों के संस्कृत एवं वेद के आचार्यों तथा वेदों में श्रद्धा रखने वाले सभी सज्जनों, विशेष रूप से नवयुवकों से यह विनम्र प्रार्थना है कि गम्भीर विचार विमर्श करने के उपरान्त इस पवित्र कार्य को शीघ्र सम्पन्न करवा कर पुण्य अर्जित करें।

यह भी अनुरोध है कृपया इस पुस्तिका की आवश्यकतानुसार और प्रतियाँ छपवा कर सभी विद्वानों को उपलब्ध कराने तथा वैदिक ज्ञान के लिये मेरी निम्नांकित पुस्तकों का अवलोकन अवश्य करने का कष्ट करें।

1. वेद सुरभि	मूल्य–120
2. यजुर्वेद अन्तिम अध्याय–ईशावास्योपनिषद्	मूल्य–120
3. सावित्री अथवा गायत्री महामन्त्र	मूल्य–100
4. प्रेमामृत	मूल्य– 80
5. यज्ञानुराग	मूल्य– 50

<u>धर्मो रक्षति रक्षितः</u>

विधुशेखर त्रिवेदी

यो भूतं च भव्यं च सर्व यश्चाधितिष्ठति।

स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

अथर्व वेद 10।8।1

(यः भूतं च भव्यं च) जो भूत भविष्य तथा वर्तमान (यः सर्व अधितिष्ठति) सब का अधिष्ठाता है, सबका स्वामी है, (यस्य च केवलं स्वः) और जिसका केवल प्रकाशस्वरूप ज्ञानस्वरूप तथा आनन्द स्वरूप ही है अर्थात् जिस निराकार ब्रह्म का अन्य कोई स्वरूप नहीं है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

—0—

पतनोन्मुख भारतीय समाज में जब वेदों का अध्ययन–अध्यापन लगभग नगण्य हो गया और दुष्टों तथा धूर्तों ने माँस–मदिरा आदि का सेवन यज्ञों में भी प्रारम्भ कर दिया, तब उन्होंने इससे सम्बन्धित फर्ज़ी मंत्र बनाकर वेदों में सम्मिलित कर दिये किन्तु उदासीन

ब्राम्हण समाज ने न तो इस ओर कोई ध्याान दिया और न इसका विरोध किया।

हम केवल यही कहते रहे कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और इनमें कोई मिलावट नहीं है, जब कि वास्तविकता इसके सर्वथा विपरीत है।

उदाहरणार्थ– यजुर्वेद, अध्याय, 21 के मंत्र 41 का अवलोकन करें।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेतां हविर्होतर्यज ।
होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज ।
होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज ॥ ४१

1. होता ने अश्विनी कुमारों के लिये बकरे की चर्बी और माँस से यज्ञ किया, हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। अश्विनौ बकरे की वपा और मेद का आस्वादन करें

2. होता ने सरस्वती का मेढ़े की वपा और माँस से यजन किया, हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। सरस्वती वपा और मेद का सेवन करें।

3. होता ने बैल की वपा और माँस से इन्द्र का यजन किया, हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। इन्द्र बैल की वपा और मेद का आस्वादन करें।

हलायुध कोष के अनुसार वपा = मेदः = वसा (माँस प्रभव धातु विशेषः)। शुद्ध माँसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता – इति सुश्रुतः। माँस रोहिणी।

मेदः– यन्मासं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते। मेदो हि सर्व भूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम्–

इति भाव प्रकाशः

आर्य समाज द्वारा स्वामी दयान्द सरस्वती जी के नाम से यजुर्वेद का जो हिन्दी भाष्य प्रकाशित किया गया है, किन्तु जो वास्तव में स्वामी जी द्वारा किया हुआ भाष्य नहीं है,उसमें इस मंत्र का जो अर्थ एवं भावार्थ दिया गया है, वह वास्तव में निरर्थक और मंत्र में प्रयोग किये शब्दों से बिलकुल उलटा है।

दुर्भाग्य से श्री सातवलेकर जी ने भी अपने भाष्य में शब्दों को घुमा फिरा कर वास्तविक अर्थ छिपाने का प्रयास किया है क्योंकि संभवतः वह सत्य अर्थ बता कर वेद का अपमान नहीं करना चाहते थे।

यही स्थिति अध्याय 21 के मंत्र सं. 42 से 47 तथा 59, 60 की है। इनका अर्थ तो और भी अधिक घृणित है। इसी प्रकार यजु 28/46 के अर्थ में मेद को बकरे का

घी और दूध लिखकर उक्त दोनों भाष्यकारों ने सत्य को छिपाने का प्रयास किया है।

आश्चर्य है कि इतने बड़े बड़े विद्वानों ने भी सत्य का सामना करने और गन्दगी तथा मिलावट को सामने लाने का प्रयास नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग यही नहीं समझ सके के वेद में माँस तथा चर्बी आदि से यज्ञ किये जाने वाले गन्दे मन्त्र मिला दिये गये हैं।

जिन यज्ञों में पशुवध होता था, उनमें पूर्व वेदी और उत्तर वेदी बनायी जाती थी। पशुवध उत्तर वेदी में ही होता था। उत्तर वेदी के पास बलि पशु बांधने का यूप होता था। यह 'उत्तर वेदी' शब्द यजुर्वेद के 19वें अध्याय के 16वें मंत्र में आया है।

यद्यपि यह सही है कि पशु, अज, गो, अश्व, माँस, रुधिर वपा, मेद आदि शब्दों के अन्य अर्थ भी होते हैं, फिर भी शतपथ ब्राह्मण, जिसे हम अत्यन्त श्रेष्ठ ग्रन्थ मानते हैं, में आगे दिये गये वर्णन से स्पष्ट है कि यहाँ इन शब्दों के अर्थ पशु शरीर के माँस, मद, वपा, चर्बी, आदि ही हैं।

तैतिरीय संहिता प्रपाठक 2, अध्याय 9 मं. 2 में कहा गया है–

ऋग्वेद का पाठ देवताओं के लिये दूध की आहुतियाँ, यजुर्वेद का घृत की आहुतियाँ, सामवेद का सोम की आहुतियाँ, अथर्ववेद का मधु की आहुतियाँ और ब्राह्मण, इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी आदि का पाठ मेद की आहुतियाँ हैं। यहाँ चारों वेदों का सम्बन्ध दूध, धृत, सोमरस और मधु की आहुतियों के साथ बताया गया है, किन्तु ब्राह्मण और पुराण आदि जितने उत्तर युगीयशास्त्र हैं, उन सबका सम्बन्ध मेद अर्थात चर्बी की आहुतियों के साथ बताया गया है।

महाभारत में कहा गया है –

श्रूयते हि पुरा कल्पे नृणां व्रीहिमयो पशुः।
येनायजन्त यज्वनाः पुण्यलोकपरायणाः ।।

महा.अनु 115/56

सुरां मत्स्यान्मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद्वेदेषु कल्पितम्।
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्वितम्।

महा.शा.264/9–10

6.

पूर्वकाल में अन्नरूपी पशु अर्थात् अन्न से ही याज्ञिक लोग यज्ञ करते थे। मद्य, माँस आदि का प्रचार तो लोभी, लोलुप और धूर्तों ने कर दिया है, इसका वेदों में कोई उल्लेख नहीं है।

यज्ञों में माँस मदिरा तथा पशु वध से सम्बन्धित मन्त्रों की मिलावट का प्रमाण शतपथ ब्राह्मण के निम्नांकित उद्धरणों से प्राप्त होता है।

1. अब मित्र वरुण के लिये अनुबन्ध्या गाय को मारते हैं। 4 |5 |1 |5

2. अब मित्र और वरुण के लिये वशा (बन्ध्या गाय) ही ठीक है। यदि बन्ध्या गाय न मिले तो बैल ही ठीक है 4 |5 |1 |9

3. वे वशा का आलमन करते है और उसका आलमन करके उसे मारते हैं। मारने के बाद कहतें हैं, वपा को निकाल''जब वपा निकाल चुके तो मारने वाले से कहना चाहिये गर्भ को खोजे। (श. ब्राह्मण अध्याय) 4 |5 |2 |1

4. यदि घोड़े जुते हुये रथ का दान देना हो, तो वशा की वपा की आहुती के पश्चात् देना चाहिये 4 |5 |8 |15

5. जिससे सुरा बनाई जाती है, उसे परिस्रुत कहतें हैं। 5 |1 |2 |14

6. जब होता माहेन्द्र ग्रह को ले, तो वपा की आहुति होनी चाहिए। 5 |1 |3 |4

7. जब दूसरे पशुओं की वपा को व्यवहार में लावे, तभी इस गाय की वपा को भी व्यवहार में लाना चाहिए 5 |1 |3 |6

8. अब वह कहता है–'प्रजापतये'– यह धीरे से बोलता है। अब कहता है–छागानां हविषोऽनुब्रूहि–बकरों की हवियों के लिये अनुवाक् पढ़ो। अब धीरे से कहता है– 'प्रजापतये', फिर कहता है– 'छागानां हविः प्रस्थितं प्रेष्य'–बकरों की हवि को तैयार कर। और वषट्कार बोलने के पश्चात् आहुति देता है। 5 |1 |3 |14

9. जो राजसूय यज्ञ करता है और इस रहस्य को समझता है उसके घर में यह अनुमता गौ मारी जाती है। 5 |3 |1 |10

10. वह दीक्षा लेता है उपवास के दिन वह अग्नि–सोम के पशु को पकड़ता है। उसकी वपा (चर्बी) की आहुति देकर अग्नि–सोम का 11 कपालों का पुरोडाश बनाता है। 5 |3 |3 |1

11. अश्विनों के लिए श्येत (बकरा) चाहिए, क्योंकि अश्विन श्येत होते है, सरस्वती के लिए मल्हा अवि (वह नर भेड़ा जिसके स्तन होते हैं), सुत्राम्णी इन्द्र के लिये एक बैल।

8.

ऐसे गुणों वाले पशु कठिनाई से मिलते हैं। यदि ऐसे पशु न मिलें, बकरों को ही ले लें, क्योंकि बकरे सुगमता से पक जाते हैं। यदि बकरों को ही ले तो अश्विनों के लिये लाल होना चाहिए। 5 |5 |4 |1

12. अग्नि को मालूम हो गया कि मेरा पिता प्रजापति मुझको तलाश कर रहा है। मुझको ऐसा रूप धारण करना चाहिए कि वह मुझे न पहचाने। उसने इन पाँच पशुओं को देखा–पुरुष, अश्व, गौ, अवि, और अज। वह इन पाँच पशुओं में प्रविष्ट हो गया। चूँकि उसने इनको देखा (**अपश्यत्**) इसलिए इनका नाम पशु हो गया। या उसने इनमें अग्नि को देखा इसलिये इनका नाम पशु हुआ 6 |2 |1 |1

13. बकरे का आलभन इसलिए करते हैं, क्योंकि इस पशु में सब पशुओं का रूप है। यह जो डाढ़ी नहीं और सींग नहीं, यह पुरुष का रूप है। यह जो डाढ़ी नहीं और गर्दन के बाल (अयाल) हैं, वह अश्व का रूप, घोड़े के दाढ़ी नहीं होती, अयाल होते हैं और आठ खुर भी, आठ खुर बैल के होते हैं, इसलिए यह बैल का रूप है। उसके खुर अवि अर्थात भेड़ जैसे हैं, इसलिये वह भेड़ का रूप हैं। और अज तो है ही। और जो इसका आलभन करता है उससे मानो सभी पशुओं का आलभन हो जाता है।

जैसी उनकी इच्छा हो, या तो पाँच पशुओं का अलग–अलग आलभन किया जाय या एक प्रजापति के लिये पशु का या एक नियुत्वत् के लिये पशु का। 6 |2 |2 |15

14. जब पशु मारा जा रहा होता है तब उसका शोक हृदय में क्रेन्द्रित हो जाता है और हृदय से शूल में। जब हृदयसहित पशु को पकायेंगे तब शोक पूरे पशु में फैल जाएगा। इसलिए हृदय को एक बगल से काष्ठ पर लेकर पकावें। 11 |7 |4 | 3

15. इसलिए वपा पाँच भागवाली होती है। 11 |7 |4 | 4

16. यह जो सुरा है, वह जलों और ओषधियों का रस है। 12 |8 |1 |4

17. पशुओं की वपा से अभिषेक करता है। पशुओं की वपा श्री है। पशुओं के इस रस या श्री से इसका अभिषेक करता है। यह जो वसा है, वह परम अन्न है। इस प्रकार इसका परम अन्न से अभिषेक करता है। 12 |8 |3 |12

18. यह सौत्रामणी यज्ञ सुरा से किया जाता है। 12 |8 |3 |1(सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्)

19. उत्तरवेदी में यज्ञ के पशुओं को पकाते हैं। 12 |9 |3 |11

20. उत्तरवेदी में पशुओं, पुरोडाशों और दूध के ग्रहों से यज्ञ करते हैं, और चीजों से भी। इस प्रकार देवों को देवलोक में प्रसन्न करता है। 12 |9 |3 |14

21. कहते हैं कि जंगल के पशुओं की तो पशुओं में गिनती ही नहीं है। इसलिये इनकी आहुति न देवे। 13 |2 |3 |3

22. ग्राम्य पशुओं से यज्ञ की सम्पूर्ति होती है। 13 |2 |3 |4

23. अश्वमेध की पूर्णता के लिये शक्वरी मन्त्रों के पृष्ठ होते हैं और भिन्न–भिन्न दिनों में भिन्न–भिन्न पशुओं का आलभन होता है। 13 |3 |2 |2

24. अन्तिम दिन गाय आदि का आलभन होता है क्योंकि वे सब पशु हैं, जो गाय आदि हैं। इस प्रकार सब पशुओं का आलभन करता है |13 |3 |2 |3

25. अब वपाओं के होम का वर्णन करते हैं, वैश्वदेव की वपा की आहुति होने तक अलग–अलग आहुतियाँ देवे। 13 |5 |2 |1

26. याज्ञवल्क्य ने कहा कि प्रजापति के पशुओं की वपाओं की आहुतियाँ साथ–साथ देनी चाहिएँ, और जो पशु एक–एक देवता के हैं, उनकी वपा की आहुति साथ–साथ देनी चहिये। 13 |5 |3 |6

27. चौबीस गौ के सम्बन्धी पशुओं का आलभन होना चाहिए। 13 |5 |3 |11

28. उदयनीय आहुति की समाप्ति पर इक्कीस बाँझ गायों का आलभन करतें हैं। ये गायें मित्र–वरुण, वैश्वदेव, बृहस्पति की हैं, इन देवताओं की तृप्ति के लिये। 13 |5 |4 |25

29. उदयनीय आहुतियों की समाप्ति पर ग्यारह बाँझ गायों का आलभन होता है– मित्र–वरुण की, विश्वदेवों की और बृहस्पति की। 13 |6 |2 |17

इससे स्पष्ट हो जाता है कि यजुर्वेद में गाय आदि के माँस तथा वपा से यज्ञ किये जाने के मन्त्र मिलाये गये हैं। जिस वशा गाय की महिमा अथर्व वेद 10 |10 |16 में जगत् के समस्त पदार्थों की जननी के रूप में की गयी है, उसी को काटने की बात कहना कितना निन्दनीय है।

संसार में किसी भी धर्मावलम्बी ने अपने धर्म का इतना घोर अपमान न किया होगा, और उसे इतना हास्यास्पद न बनाया होगा, जितना उवट तथा महीधर ने वैदिक धर्म को बनाया है।

यजुर्वेद के 23वें अध्याय के 18वें मंत्र से प्रारम्भ करके मंत्र सं. 31 तक इन दोनों ने अश्लीलता की सारी सीमायें पार करते हुए अपनी नीचता तथा मूर्खता का

परिचय दिया है। फिर भी हम लोग इसे सहन कर रहे हैं,यह हमारे पतन की पराकाष्ठा है।

कोई आदमी कितना नीचे गिर सकता है इसे देखने के लिए इन दोनो के द्वारा किए गए अर्थों की फोटो प्रतिलिपि दी जा रही है।

प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥

[अम्बे । अम्बिके । अम्बालिके । न । मा । नयति । कः । चन ॥ ससस्ति । अश्वकः । सुभद्रिकामितिसुभद्रिकाम् । काम्पीलवासिनीमितिकाम्पील वासिनीम् ॥१८॥

प्राण-अपान-व्यान के लिए यह आहुति है। (महिषी, वावाता और रखैल अश्व के निकट जाती हैं।) हे अम्बे-अम्बिके-अम्बालिके (=माँ) ! कोई भी पुरुष मुझे अश्व के पास शीघ्र नहीं पहुँचाता (मेरे शीघ्र न पहुँचने के कारण ही) यह दुष्ट अश्व उस काम्पील-वासिनी सुभद्रिका को लेकर सो रहा है ॥ १८ ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १९ ॥

(पत्नियाँ पहुँच कर अश्व की नौ प्रदक्षिणाएँ करती हैं।) गणों में श्रेष्ठ तुझ गणपति को हम याचित करती हैं। प्रियों में प्रियपति हम तुम्हें याचित करती हैं। सुखनिधियों में श्रेष्ठ सुख के निधिपति तुम्हें हम याचित करती हैं। हे वसुरूप अश्व ! तुम्हीं हमारे पति होओ। (महिषी अश्व के पास लेटती है।) हे अश्व ! गर्भधारक तुम्हारा तेज मैं खींच कर स्वयोनि में धारण करती हूँ। तुम उस गर्भधारक स्वतेज को खींच कर मेरी योनि में डालते हो ॥ १९ ॥

ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

हे अश्व ! आओ हम-तुम दोनों अपने चार पैर फैलावें। (अध्वर्यु—) हे अश्वमहिषी ! तुम दोनों इस स्वर्गीय यज्ञभूमि में स्वयं को चादर से ढँक लो। (महिषी घोड़े के लिङ्ग को खींचकर अपनी योनि घुसेड़ती है।) वीर्यवान् अश्व, वीर्य को धारण कराने वाला मुझमें स्ववीर्य को धारण करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्। यः स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥

(यजमान घोड़े से कहता है—) हे सेचक अश्व ! उठी जंघाओं वाली इस महिषी की योनि में अपना लिङ्ग डालो—उसे आगे-पीछे चलाओ। यह लिङ्ग ही स्त्रियों का जीवन और भोजन है ॥ २१ ॥

यकाऽसकौ शकुन्तिकाऽऽहलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२ ॥

(कुमारी कन्या से अध्वर्यु चूत की ओर अंगुली दिखाकर—) यह (चूत) कौन-सी छोटी फुदकी 'आहलग्' शब्द कर रही है ? जब भग में शिश्न को मारते (=धक्के लगाते) हैं, तब योनि लिङ्ग को मानो निगल लेती है ॥ २२ ॥

यकोऽसकौ शकुन्तक आहलगिति वञ्चति । विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥ २३ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः । प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥ २४ ॥

(ब्रह्मा महिषी से कहता है—) हे महिषि ! तुम्हारी माता और तुम्हारा पिता जब खाट पर चढ़ते हैं । 'मैं स्नेहित करता हूँ' —ऐसा कहकर तेरा पिता मुट्ठी से शिश्न को भग में घुसेड़ता है । (—उसी से तू पैदा हुई है) ॥ २४ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः । विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥ २५ ॥

(महिषी—) हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे भी माता-पिता जब खाट पर रति-क्रीडा करते हैं…… । कुछ और कहने की इच्छा कर रहा है तुम्हारा मुख । हे ब्रह्मन् ! तुम अधिक कुछ मत कहो ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्यै मध्यमेधताꣳशीते वाते पुनन्निव ॥ २६ ॥

(उद्गाता वावाता के प्रति—) अरे भाई ! इस वावाता को जरा ऊपर तो उठाओ—जैसे भार को वहन करते हुए (थकने पर) जरा ऊपर उठाते हैं। तब इसका मध्य योनिभाग फूल उठेगा, जैसे शीत वायु में अनाज उसाते समय कृषक अनाज से भरी डलिया को ऊपर उठाता है ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥ २७ ॥

(वावाता उद्गाता के प्रति—) अरे भाई ! कोई इस उद्गाता को जरा ऊपर उठाओ, जैसे पर्वत पर भार वहन करते हुए थक कर उसे जरा ऊपर उठाते हैं। तब इस मध्यलिंगभाग का कम्पन करे, जैसे शीत वायु में अनाज उसाते हुए कृषक का हाथ कम्पन करता है ॥ २७ ॥

यदस्या अꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥

(होता परिवृक्ता के प्रति—) जब छोटी योनि वाली के भग में छोटा-मोटा लिंग घुसता है, तब अण्डकोष इसकी चूत के ऊपर ही कम्पन करते रह जाते हैं, जैसे गाय के पैर में भरे हुए जल में दो मत्स्य गति करें ॥ २८ ॥

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः । सक्था देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २९ ॥

(परिवृक्ता होता के प्रति—) जब यह देवजन प्रकर्ष से श्लेष्मास्रावी लिंग को भग में प्रविष्ट करते हैं, तब मात्र जंघा-स्थियों से नारी कही जाती है (—अन्यथा उसके सर्वांश का लोप हो जाता है, क्योंकि सुरतिरत पुरुष नारी को सर्वांशतः छाप लेता है ।), जैसे कि आँख से देखे सत्य का विश्वास । (यदि कोई यह कहे कि यह ब्राह्मण तो साक्षात् देवता हैं—विद्वान् हैं। यह डरते-डरते साधारण रति करते होंगे । वह भी किसी आसन आदि के साथ नहीं । तो यह 'कान की सुनी' के समान असत्य-प्राय है । 'आँख की देखी' के समान सत्य यही है कि ऊपर के यह देवता भोगकाल में नारी की जान ले लेते हैं) ॥ २९ ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

(क्षत्ता पालागली के प्रति—) जब किसी किसान के हरे-भरे खेत में घुसकर कोई हिरन उसके खेत को चरता है, तो किसान यह नहीं स्वीकार करता कि हरे-भरे धान्यों को चरकर पशु मोटा हो गया होगा । वह तो यही जानकर दुःखी होता है कि उसका खेत चर लिया गया । इसी प्रकार जब कोई शूद्रा किसी धनी की रखैल बन जाती है, तब उसका पति यह नहीं समझता कि अब उसके घर में प्रभूत धन आएगा । वह तो यही जानता है कि उसकी स्त्री व्यभिचारिणी हो गई ॥ ३० ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते ॥ ३१ ॥

(पालागली क्षत्ता के प्रति—) जब हरिण अनाज खाता है, तब 'पशु पुष्ट हो गया, क्या प्रसन्नता की बात है'—किसान ऐसा नहीं मानता । जब शूद्र किसी धनी की स्त्री का जार बन जाता है, तब वैश्य भी इसे अपनी पुष्टि नहीं स्वीकार नहीं करता । बल्कि वह क्लेशित ही होता है ॥ ३१ ॥

दुर्भाग्य की बात है कि शतपथ ब्राह्मण में भी इन मन्त्रों का जो निम्नांकित अर्थ दिया गया है, वह भी इन लोगों के द्वारा किये गये अर्थ के समान ही निन्दनीय है।

1. ऊपर को जाते हुए देवों को स्वर्गलोक का मालूम न था, घोड़ा जानता था। इसलिए ऊपर को जाते समय घोड़े को ले जाते हैं, स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिए। घोड़े के नीचे एक कपड़ा, एक और बिछौना और सोना बिछा देते हैं और यहाँ उसको बेहोश कर देते हैं (वध करते हैं।) ऐसा अन्य किसी पशु के साथ नहीं करते। इस प्रकार अन्य पशुओं से अश्व की विशेषता हो जाती है। **शतपथ 13 ।2 ।8 ।1**

2. बेहोश करना मारना ही है। जब बेहोश करते हैं, तो इन मंत्रो को बोलते हैं और आहुति देते हैं–प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा,(यजु०23 ।18)–

इस प्रकार उसमें प्राण स्थापित करता है। इस प्रकार जीवित पशु का ही यज्ञ हो जाता है। **शतपथ 13 |2 |8 |2**

3. "अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन" (यजु॰23 |18)–इस मंत्र से पत्नियों को ले जाता है। इससे वह उनको पुकारता है। वह उनको पवित्र करता है। **शतपथ 13 |2 |8 |3**

4. "गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे(यजु॰23 |19)– पत्नियाँ परिक्रमा देती हैं। वे इस का प्रतीकार करती हैं, प्रतीकार तो हो ही जाता है। पंखा करती हैं। तीन परिक्रमाएँ होती हैं। तीन लोक होते हैं। इन्हीं लोकों द्वारा उसको पंखा करती हैं। तीन बार फिर परिक्रमा करती हैं। छः हो जाती हैं छः ऋतुएँ होती हैं। मानो ऋतुओं द्वारा पंखा करती हैं। **शतपथ 13 |2 |8 |4**

5. जो यज्ञ में पंखा करते हैं, उनके प्राण उनसे निकल जाते हैं। नौ बार परिक्रमा करती हैं। नौ प्राण होते हैं। इस प्रकार प्राणों को धारण करती हैं। इनसे प्राण निकलते नहीं। "आहम जानि गर्भधमा गर्भधम्"(यजु॰23 |19)–मैं गर्भ धारण करने वाले को प्रेरणा करूं। तू गर्भ धारण करने वाले को प्रेरणा कर।

गर्भ का अर्थ है, प्रजा और पशु। प्रजा और पशुओं को अपने में धारण करता है। "ताऽ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव"(यजु०23 ।20)–हम दोनो चार पैरों को फैलावें, जोड़ा मिलाने के लिए। **"स्वर्गे लोके प्रोर्णवाथां"**(यजु०23 ।20)–स्वर्ग लोक में अपने को ढंको। जहाँ पशु मारा जाता है वह स्वर्गलोक ही है। "वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु"(यजु०23 ।20) – बलवान वीर्य स्थापित करने वाला वीर्य स्थापित करे। जोड़े को मिलाने के लिये 13 ।2 ।8 ।5

6. अश्व का आलभन सब देवताओं के लिए किया जाता है। यदि केवल प्रजापति के लिए किया जाय तो अन्य देवता भी इसके हिस्सेदार हैं, उनका हिस्सा छिन जाय। । 13 ।3 ।4 ।1

अश्वमेध की पूर्णता के लिये शक्वरी मन्त्रो के पृष्ठ होते हैं और भिन्न–भिन्न दिनों में भिन्न–भिन्न पशुओं का आलभन होता है ।13 ।3 ।2 ।2

अन्तिम दिन गाय आदि का आलभन होता है, क्योंकि वे सब पशु हैं, जो गाय आदि हैं इस प्रकार सब पशुओं का आलभन करता है। ।13 ।3 ।2 ।2

20.

शतपथ, अध्याय 5 ब्राह्मण 2 में कहा गया है–

इतने मंत्रों को पढ़कर अध्रिगु का जो परिशिष्ट भाग है, उसको पढ़ता है। घोड़े के लिए 'कपड़ा, ऊपर की चद्दर, और सोने' को बिछाता है। इसपर वे घोड़े का वध करते हैं। जब पशुओं का वध हो चुका तो पत्नियाँ पैर धोने के लिए पानी लाती हैं। चार पत्नियाँ, पाँचवीं एक कुमारी चार सौ अनुचरियाँ ॥१॥

पैर धोने के पानी के तैयार होने पर महिषी (पटरानी) को घोड़े के पास सुलाते हैं, और चद्दर से ढक देते हैं। 'स्वर्गलोक में तुम अपने को ढक लो' ऐसा कहकर। जहाँ पशु का वध करते हैं वही स्वर्गलोक है। अश्व के शिश्न को महिषी उपस्थ में रखती है और मिथुन की पूर्ति के लिए कहती है—"वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु" (यजु० २३।२०)(अर्थात् वीर्य सींचनेवाला वीर्य धारण करावे) ॥२॥

जब वे दोनों लेटे हैं तो यजमान घोड़े को सम्बोधित करता है—"उत्सक्थ्या ऽ अव गुदं धेहि" (यजु० २३।२१)। इसका उत्तर नहीं देता, इसलिए कि कोई यजमान का प्रति-प्रति (मुकाबिले का, rival) न हो जाय ॥३॥

अब अध्वर्यु कुमारी से कहता है—'हे-हे कुमारी ! वह छोटी चिड़िया' (यजु० २३।२२)। कुमारी उसका उत्तर देती है—'हे-हे अध्वर्यु ! वह छोटा चिड्डा" (यजु० २३।२३) ॥४॥

अब ब्रह्मा महिषी को कहता है—"हे-हे महिषी ! माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहत:" (यजु० २३।२४)। सौ राजपुत्रियाँ उसकी अनुचरी होती हैं। वे ब्रह्मा को उत्तर देती हैं—"हे-हे ब्रह्मा ! माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य क्रीडत:"(यजु० २३।२५) ॥५॥

अब उद्गाता वावाता से कहता है—"हे-हे वावात ! ऊर्ध्वमिनामुच्छ्रापय" (यजु० २३।२६)। उसकी जो सौ क्षत्रिय अनुचरियाँ होती हैं वे उत्तर देती हैं कि "हे उद्गाता ! ऊर्ध्वा-मेननुच्छ्रयतात्" (यजु० २३।२७) ॥६॥

अब होता परिवृक्ता (रानी) से कहता है—"हे परिवृक्ता ! यदस्या ऽ अं हुभेद्या···" (यजु० २३।२८)। नौकरों की सौ लड़कियाँ उसकी अनुचरी होती हैं। वे होता को उत्तर देती हैं—"यद् देवासो ललामगुम्" (यजु० २३।२९) ॥७॥

अब क्षत्ता पालागली रानी से कहता है—"हे पालागली ! यद् हरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते" (यजु० २३।३०)। सूत आदि की सौ लड़कियाँ उसकी सहचरियाँ होती हैं। वे उत्तर देती हैं—"हे क्षत्ता ! यद् हरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते" (यजु० २३।३१) ॥८॥

ये अभिमेथिक वाणियाँ सब साधनों को प्राप्त करती हैं। अश्वमेध में सब कामनाओं की प्राप्ति होती है। 'सब प्रकार की वाणी से सब कामनाओं को प्राप्त करें' ऐसा सोचकर महिषी को उठाते हैं। फिर वे स्त्रियाँ जैसी आई वैसी लौट जाती हैं।

जब वपायें पक जायें और स्वाहा से उनकी आहुति दे दी जाये तब शास्त्रार्थ करते हैं। 13 |5 |2 |11

स्वामी दयानन्द जी ने उक्त गन्दे अर्थों का विरोध किया और इन मन्त्रो का सही अर्थ बताने का प्रयास किया किन्तु शतपथ के ऊपर दिये गये उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि मंत्र 20 से 29 तक वास्तव में अश्लील तथा मिलावटी हैं और इन्हें वेद में रखे जाने का कोई औचित्य नहीं हैं

वेदों में मिलावट के सम्बन्ध में श्री रघुनन्दन शर्मा जी की पुस्तक वैदिक सम्पत्ति का निम्न लिखित भाग पठनीय है। –

जिन स्थानों को प्रक्षिप्त बतलाया जाता है, वे बहुत दिन से—ब्राह्मणकाल से—सबको ज्ञात हैं। वे प्रक्षिप्त नहीं हैं, किन्तु एक प्रकार के परिशिष्ट हैं, जो लेखकों और प्रेसवालों की असावधानी से मूल में घुस कर मूल जैसे मालूम होते हैं। वालखिल्य सूक्त ऋग्वेद में, खिल अर्थात् ब्राह्मणभाग यजुर्वेद में, आरण्यक और महानाम्नी सूक्त सामवेद में और कुन्तापसूक्त अथर्ववेद में मिले हुए हैं। इनको सब लोग जानते हैं और सबके विषय में विस्तृत प्रमाण उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्थल यजुर्वेद और अथर्ववेद में और हैं जिनकी सूचना उन्हीं वाक्यों से दी जाती है कि वे प्रक्षिप्त हैं। कहने का मतलब यह कि जिस प्रकार शाखाओं का गड़बड़ सबको ज्ञात है और शुद्ध वैदिक शाखाएं उपलब्ध हैं, उसी तरह प्रक्षिप्त भाग का भी ज्ञान सबको है और उसको हटाकर शुद्ध संहिताओं के रूप को सब जानते हैं। ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्तों के लिए ऐतरेय ब्रा० २८।८ में लिखा है कि **'वज्रेण वालखिल्याभिर्वाच: कूटेन'**। इसके भाष्य में सायणाचार्य कहते हैं कि **'वालखिल्यनामका: केचन महर्षय: तेषां सम्बन्धीन्यष्टौ सूक्तानि विद्यन्ते तानि वालखिल्यनामके ग्रन्थे समाम्नायन्ते'** अर्थात् वालखिल्य नाम के कोई महर्षि थे। उनसे सम्बन्ध रखनेवाले आठ सूक्त हैं। वे खिल्य नाम के ग्रन्थ में लिखे गये हैं। इस वर्णन से मालूम हुआ कि वालखिल्य सूक्तों की अलग पुस्तक थी। वही पुस्तक ऋग्वेद के परिशिष्ट में आ गई है और अब तक 'अथ वालखिल्य' और 'इति वालखिल्य' के साथ ऋग्वेद में ही सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त अनुवाकानुक्रमणी में स्पष्ट लिखा हुआ है कि **'सहस्रमेतत्सूक्तानां निश्चितं खैलिकैर्विना'** अर्थात् खिल भाग को छोड़कर ऋग्वेद के एक सहस्र सूक्त निश्चित हैं। यहाँ वालखिल्यों को ऋग्वेद की गिनती में नहीं गिना गया। इस तरह से ऋग्वेद का खिल सबको ज्ञात है।

इसी तरह यजुर्वेद का मिश्रण भी प्रसिद्ध है। सर्वानुक्रमणी में लिखा है कि **'माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुक्रिये ऋषिदैवतछन्दांस्यनुक्रमिष्याम:'** अर्थात् ऋचा, खिल और शुक्रिय मंत्रोंके सहित माध्यन्दिनी यजुर्वेद के ऋषि, देवता और छन्दों की अनुक्रमणी बनाता हूँ। यहाँ खिल भाग का प्रत्यक्ष इशारा है। इसके आगे अनुक्रमणी में ही लिखा हुआ है कि, **'देवा यज्ञं ब्राह्मणानुवाकोविंशतिरनुष्टुभ: सोमसम्पत्'** अर्थात् यजुर्वेद १७। १२ के **'देवा यज्ञमतन्वत'** मन्त्र से लेकर बीस अनुष्टुभ छन्द ब्राह्मणभाग हैं और **'अश्वस्तूपरो ब्राह्मणाध्याय: शादंदद्भिस्त्वचान्तश्च'** अर्थात् यजुर्वेद का चौबीसवां अध्याय सबका सब और २५ वें अध्याय के प्रारम्भ के शादं से लेकर त्वचा तक नौ मन्त्र ब्राह्मण हैं और **ब्राह्मणे ब्राह्मणमिति द्वे कण्डिके तपसे अनुवाकश्च ब्राह्मणम्** अर्थात् यजुर्वेद अध्याय ३० के 'ब्राह्मणे ब्राह्मणम्' और शेष सारा अध्याय ब्राह्मण है। परन्तु हम देखते हैं कि वाजसनेयी संहिता की मन्त्रसंख्या १९०० ही है, जिसमें शुक्रिय के भी मन्त्र मिले हुए हैं। क्योंकि लिखा है कि—

द्वे सहस्रे शतं न्यूनं मन्त्रे वाजसनेयके। इत्युक्तं परिसंख्यातमेतत्सर्वं सशुक्रियम्॥

अर्थात् सौ कम दो हजार मन्त्र वाजसनेय के हैं और इसी में शुक्रिय के भी सम्मिलित हैं। जब यह वाजसनेयी संहिता है, तब इसमें सब मन्त्र वाजसनेय के ही होने चाहिये, शुक्रिय के नहीं। किन्तु हम देखते हैं कि वर्तमान वाजसनेयी संहिता की मन्त्रसंख्या १९७५ है, इससे स्पष्ट हो जाता है कि शुक्रिय के मन्त्र तो १९०० में ही घुसे हैं और शेष ७५ मन्त्र कहीं बाहर से लाकर जोड़े गये हैं। हमको ब्राह्मणभाग के प्रक्षेप का पता मिल रहा है, इससे ज्ञात होता है कि यजुर्वेद का प्रक्षेप भी सब पर प्रकट है और प्रसिद्ध है।

इसी तरह सामवेद का भी खिल-भाग अर्थात् परिशिष्ट भाग प्रसिद्ध है। सभी जानते हैं कि सामवेद की महानाम्नी ऋचाएँ और आरण्यकभाग परिशिष्ट हैं। महानाम्नी ऋचाओं के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण २२।२ में लिखा है कि 'ता ऊर्ध्वा सीम्नोऽभ्यसृजत। यदूर्ध्वा सीम्नोऽभ्यसृजत तत् सिमा अभवन् तत्सिमानां सिमात्वम्' अर्थात् इन महानाम्नी ऋचाओं को प्रजापति ने वेद की सीमा के बाहर बताया है। बाहर होने के कारण ही इनका नाम सिमा है। यहाँ महानाम्नी ऋचाएँ स्पष्ट रीति से ऋग्वेद की सीमा के बाहर बतलाई गई हैं। ये अब तक पूर्वार्चिक के अन्त में लिखी जाती हैं। इसी तरह आरण्यकभाग भी परिशिष्ट ही है। यह बात सामवेदसंहिता के देखने मात्र से स्पष्ट हो जाती है। सामवेदसंहिता के दो विभाग हैं। एक का नाम पूर्वार्चिक है और दूसरे का उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छै प्रपाठक हैं और प्रत्येक प्रपाठक के पूर्वार्ध उत्तरार्ध दो दो विभाग हैं। यह क्रम पाँच प्रपाठकों में एक ही समान है, परन्तु छठे प्रपाठक में जहाँ यह आरण्यकखण्ड जुड़ा हुआ है, उसमें तीन विभाग छपे हुए हैं। यह तीसरा विभाग ही आरण्यक है। इसको सायणाचार्य ने भी परिशिष्ट ही कहा है और क्रम के देखने से भी परिशिष्ट ही ज्ञात होता है, इसलिये इसके खिल होने में सन्देह नहीं है।

जिस प्रकार इन तीनों वेदों का खैलिक भाग प्रसिद्ध है, उसी तरह अथर्ववेद का कुन्ताप सूक्त भी खिल के ही नाम से प्रसिद्ध है। अजमेर की छपी हुई संहिता में जिस प्रकार ऋग्वेद का खिलभाग, 'अथ वालखिल्य' और 'इति वालखिल्य' लिखकर छापा गया है, उसी तरह अजमेर की छपी हुई अथर्वसंहिता के काण्ड २० सूक्त १२६ के आगे 'अथ कुन्तापसूक्तानि' और सूक्त १३७ के पहले 'इति कुन्तापसूक्तानि समाप्तानि' भी छपा हुआ है, जिससे प्रकट हो जाता है कि इतना भाग परिशिष्ट ही है। स्वामी हरिप्रसाद 'वेदसर्वस्व' पृष्ठ ९७ में लिखते हैं कि 'जैसे ऋग्वेदसंहिता में वालखिल्य सूक्त मिलाये जा रहे हैं, वैसे अथर्वसंहिता के अन्त में आजकल कुन्तापसूक्त मिलाये जा रहे हैं'। इस विवरण से पाया जाता है कि कुन्तापसूक्त भी परिशिष्ट ही हैं और शुरू से ही सबको ज्ञात हैं।]

ऋग्वेद के उक्त खिल सूक्तों में ही वह श्री सूक्त है जिसका आजकल सबसे अधिक प्रचार प्रसार है जब कि उसमें यजुर्वेद के 39वें अध्याय के चौथे मंत्र को छोड़कर अन्य कोई वेद मंत्र नहीं है।

इसी प्रकार रुद्राष्टाध्यायी के अन्त में **सद्योजातम् से प्रारम्भ करके शिवोम्** तक पाँच मंत्र **तथा सर्वेषां वेदानां** का एक मंत्र कुल छः मन्त्र प्रक्षिप्त है। 'इनमें स्वर चिन्ह भी लगा दिये हैं ताकि मालूम पड़े कि ये वास्तविक वेद मंत्र हैं।

श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि ऋग्वेद के 11 सूक्त बाल खिल्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। खिल का शब्दार्थ है कि पीछे से जोड़े गये मन्त्र, इन मन्त्रों की संख्या 80 है।

सामवेद में महानाम्नी ऋचायें खिल सूक्त कहलाती हैं। आरण्यक भाग भी खिल अथवा परिशिष्ट है।

अथर्व वेद के कुन्ताप सूक्त भी खिल के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आवश्यक है कि इन खिल सूक्तों को हटाकर वेदों के शुद्ध संस्करण छापे जायें ताकि उन्हें वास्तव में अपौरुषेय कहा जा सके।

जहाँ एक ओर वेद मंत्रो में मिलावट करने का प्रयास किया गया है, वहीं दूसरी ओर जो विषय वेदों में नही है, उन्हें ज़बर्दस्ती वेदों में होना बताया जा रहा है।

उदाहरणार्थ– वेदों में लक्ष्मी पूजन का कोई विधान नहीं है, फिर भी कुछ लोग वेदोक्त लक्ष्मी पूजन का प्रचार कर रहे हैं। वास्तव में वेदों में तो लक्ष्मी जी को देवी ही नहीं माना गया है, इसलिये उनके पूजन का विधान होने का प्रश्न ही नहीं है। वेदों में केवल तीन देवियों का उल्लेख है

इळा सरंस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवंः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधंः।।

ऋग्. १।१३।९,५।५।८

(इडा, सरस्वती, मही) मातृभाषा, ज्ञान की देवी सरस्वती तथा मही अर्थात् मातृभूमि, (तिस्रः देवीः मयोभुवः) ये सुख देने वाली तीन देवियाँ (अस्रिधः) क्षीण न होती हुयीं (बर्हिः सीदन्तु) प्रसन्नता पूर्वक यज्ञ में आकर विराजमान हों।

वेदों में यही तीन देवियाँ हैं। बाद में सरस्वती, का ही लक्ष्मी, ब्रह्माणी, गौरी, दुर्गा, आदि नामों से पूजन किया जाने लगा।

यही स्थिति शिवलिंग उपासना की है, जिसका वेदों में कोई उल्लेख नहीं है। इसका आरम्भ तो शिव पुराण से हुआ है। वेदों में तो कहीं शिवलिंग शब्द ही नहीं आया है। यहाँ तक कि श्वेताश्वतर उपनिषद्, जिसमें शिव की महिमा का वर्णन है, उसमें स्पष्ट रूप से लिखा है कि शिव का कोई लिंग अर्थात चिन्ह नहीं होता।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।।

श्वेता.उप. 6 ।9

यह भी उल्लेखनीय है कि आजकल बहुप्रचलित रुद्राभिषेक का भी वेदों में कोई उल्लेख नहीं है। जिन वस्तुओं, जैसे भस्म, जल, दूध, दही, शहद, बेलपत्र, आदि से रुद्राभिषेक किया जाता है, उन वस्तुओं का उल्लेख भी किसी मंत्र में नहीं है। इसके विपरीत रुद्राभिषेक के अधिकांश मंत्र, यज्ञ तथा रुद्र, इन्द्र, विष्णु, आदि देवताओं से सम्बन्धित हैं।

वास्तव में यह सब कार्य भी तो वैदिक धर्म में कई गत हजार वर्षों के पतन काल में की गयी मिलावट का ही रूप हैं।

यजुर्वेद में मिलावट

श्री बलदेव उपध्याय ने अपनी पुस्तक वैदिक साहित्य और संस्कृति में लिखा है कि–

शुक्ल यजुर्वेद की मंत्र–संहिता 'वाजसनेयी संहिता' के नाम से विख्यात है, जिसके 40 अध्यायों में से अन्तिम 15 अध्याय खिलरूप से प्रसिद्ध होने के कारण अवान्तर युगीय माने जाते हैं किन्तु यह कथन सही प्रतीत नहीं होता। इसके पश्चात् उन्होंने लिखा है कि अध्याय 26 से 29 तक खिल मन्त्रों का संग्रह है।

वैदिक सम्पत्ति में दिये गये विवरण के अनुसार यजुर्वेद 19।12 के 'देवा यज्ञमतन्वत' मंत्र से लेकर बीस अनुष्टुभ छन्द ब्राह्मण भाग हैं और **'अश्वस्तूपरो ब्राह्मणाध्यायः शादंदद्भिस्त्वचान्तश्च'** अर्थात यजुर्वेद का चौबीसवाँ अध्याय तथा 25वें अध्याय के आरम्भ के **शादं** से लेकर **त्वचा जुम्बकाय स्वाहा** तक नौ मंत्र ब्राह्मण भाग हैं इसके अतिरिक्त यजुर्वेद अध्याय 30 के मंत्र सं. 5 **'ब्राह्मणे ब्राह्मणम्'** से लेकर सारा अध्याय ब्राह्मण भाग है।

काशी से प्रकाशित श्री दौलतराम गौड़ की जिस पुस्तक से आजकल हम लोग बच्चों को वेद पढ़ाते हैं, उसमें भी लिखा है कि चरण व्यूह के अनुसार शुक्लयजुर्वेद में 1800 मंत्र होने चाहिये जब कि सी० वी० के० वैद्य के अनुसार 1900 मंत्र होने चाहिये। सर्वानुकमणी के अनुसार

भी शुक्रिय के मंत्रों को मिलाकर वाजसनेयी संहिता में कुल 1900 मंत्र होने चाहिये जब कि इस समय यजुर्वेद में 1975 मन्त्र हैं। इस प्रकार यजुर्वेद की वर्तमान मंत्र संख्या में 75 मंत्र तो स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त अथवा ब्राह्मण भाग हैं, जिन्हें संहिता में नहीं होना चाहिये। यजुर्वेद के मंत्रो के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि– निम्नांकित 128 मन्त्र ब्राह्मण भाग अथवा प्रक्षिप्त हैं,

अ.सं.	मन्त्र.सं.	कुल	विवरण
6–	19	1	प्रक्षिप्त
19–	12 से 29;तथा	18	ब्राह्मण भाग
	{31 से 33}	3	प्रक्षिप्त
24–	सभी मन्त्र	40	ब्राह्मण भाग
25–	1 से 9 और 25 से {27 तथा 32 से 43}	24	प्रक्षिप्त
30–	5 से 22 तक	18	ब्राह्मण भाग
21–	41 से 47 तथा 59,60	9	प्रक्षिप्त
23–	20 से लेकर 29 तक	10	अश्लील एवं प्रक्षिप्त
28–	11,23,46	3	प्रक्षिप्त
29–	23,35	2	प्रक्षिप्त

1975 की वर्तमान संख्या में से ये 128 मंत्र घटा देने से मंत्रों की संख्या 1847 रह जायेगी। संहिता में जो ब्राह्मण भाग के मंत्र हैं उनको भी अवश्य हटा देना चाहिये। उन्हें हटाये बिना वेदों को अपौरुषेय कैसे कहा जा सकता है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेदों मे बहुत अधिक मिलावट है किन्तु हम इसे दूर करने का कोई प्रयास नहीं कर रहें है, जो वेदों के प्रति हमारी उदासीनता का परिचायक है। जिन वेदों का एक एक अक्षर पवित्र माना जाता है, जो हमारी श्रद्धा के केन्द्र विन्दु हैं, उनमें इतनी गन्दगी कैसे सहन की जा रही है?

उपनिषदों में मिलावट

1. अनेक उपनिषदों में वेद विरुद्ध बातें होना तथा परस्पर विरोधी कथन होना यह दिखाता है, कि इनमें मनमाने तौर से मिलावट की गयी है। उदाहरणार्थ–

तैत्तिरीय उपनिषद् 2।7।1 में कहा गया है

असद्वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत । तदात्मानꣳ स्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति ।

सबसे पहले असत् ही था उसी से सत् उत्पन्न हुआ। उसने अपने को स्वयं प्रकट किया है। इसके विपरीत छान्दोग्य उपनिषद् 6।1।1 में कहा है,

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' अर्थात् आरम्भ में एक अकेला सत् ही था और दूसरी चीज नहीं थी।

जबकि ऐतरेय उपनिषद् 1।1 में कहा गया है –

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।।1।।

इस जगत में पहले केवल आत्मा ही था उसके सिवा चेष्टा करने वाला और कोई नहीं था उसी ने विचार किया कि सृष्टि की रचना करूँ। जबकि (यजुर्वेद 32/4) तथा श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है –

एषो ह देवः प्रदिषोऽनु सर्वाः

पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।

स एव जातः स जनिष्यमाणः

प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः।।

श्वेता। 2।16

यह देव अर्थात परमात्मा ही सबसे पहले था।

2. तैत्तिरीय उपनिषद् 1।5।2 में कहा गया है–

भूरिति वा अग्निः । भुव इति वायुः । सुवरित्यादित्यः । मह इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषि महीयन्ते । भूरिति वा ऋचः । भुव इति सामानि । सुवरिति यजूꣳषि । मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते ।

यहाँ भुवः को सामवेद तथा स्वः को यजुर्वेद बताया गया है जब कि वैदिक वाङ्मय में सब जगह भुवः को यजुर्वेद और स्वः को सामवेद बताया गया है। अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः।

3. मुण्डकोपनिषद् का निम्न लिखित वाक्य, जिसमें चारों वेदों को अपरा विद्या कहा गया है, निश्चित रूप से मिलावटी और वेदों के लिये अपमान जनक हैं क्योंकि जिन वेदों से ही ब्रह्म तथा आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है, जिनका अनुसरण करके ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है उन्हीं को अपरा विद्या कहा गया है–

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ।।4।।

उन शौनक मुनि से महर्षि अंगिरा ने कहा कि दो विद्यायें ही जानने योग्य हैं, एक परा और दूसरी

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।।5।।

उन दोनों में से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष अपरा विद्या है, तथा जिससे वह अविनाशी तत्व जाना जाता है वह परा विद्या है।

4. मुण्डकोपनिषद् में जहाँ एक ओर 1।2।2 से लेकर 1।2।6 तक यज्ञ की प्रशंसा की गयी है वहीं दूसरी ओर 1।2।7 से लेकर 1।2।10 तक यज्ञ की प्रशंसा करने वालों तथा इष्टापूर्त कर्मों को करने वालों को मूर्ख और अत्यन्त हीन योनियों में जाने वाला बताया गया है

5. छान्दोग्य उपनिषद् 3।17।6 में कहा है कि–

आंगिरस घोर ऋषि देवकीपुत्र कृष्ण को उस प्रसिद्ध विद्या का उपदेश देकर, पुनः बोले, हे कृष्ण! वह उपासक अन्तवेला में इन तीन पदों का जाप करे।

1 त्वम् अक्षितमसि 2। त्वम् अच्युतमसि 3। त्वम् प्राणसंशितमसि। इस विद्या को सुन कृष्ण अपिपास हो गये। इसके प्रमाण में दो ऋचायें हैं।

अगले प्रवाक 7 में इनमें से एक ऋचा का केवल कुछ अंश दिया गया है और दूसरी ऋचा **उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रा सूर्यमगन्म**

ज्योतिरुत्तमं दी गयी है। (ऋग्वेद 1। 50।10) किन्तु इस ऋचा में प्रवाक 6 में दिये गये उपरोक्त शब्दों का कोई उल्लेख नहीं है। साथ ही गलत रूप से उद्धृत इस ऋचा में **'स्वः पश्यन्त उत्तरं'** शब्द बढ़ा दिये गये हैं।

स्पष्ट है कि ये दानों प्रवाक कृष्ण जी के जन्म के बाद उपनिषद् में मिलाये गये हैं।

6. अश्लीलता का दोष बृदहारण्यक उपनिषद्, जो शतपथ का भाग है, में भी आ गया है जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है।

पंचाग्नि विद्या बताने वाले प्रवाहण जैवल ने कहा 'गौतम! यह विद्या इससे पूर्व किसी ब्राह्मण के पास नहीं रही किन्तु मैं तुम्हें इसका उपदेश करता हूँ" और फिर वह यज्ञ की तुलना स्त्री संभोग से करते हुये अपनी अश्लीलता तथा मूर्खता का परिचय इस प्रकार देते हैं।

योषा वा अग्निर्गौतम तस्य उपस्थ एव समिल्लोमानि धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्मादाहूत्यै पुरुषः सम्भवति।

हे गौतम! स्त्री अग्नि है, पुरुषेन्द्रिय ही समिधा है, स्त्री का गुप्तांग ही ज्वाला है लोम धूम है, प्रवेश ही अंगार है, आनन्द ही चिनगारियाँ है। इस अग्नि में देवों द्वार दी गयी वीर्य की आहुति से पुरुष उत्पन्न होता है। वह जन्मता है और जब तक आयु है जीता है। जब वह मरता है तो उसको अग्नि तक ले जाते हैं।14।8।1।16

दुर्भाग्य से यही पूरी अश्लील विद्या छान्दोग्य उपनिषद् 5। 8।1–2 में भी इन्हीं शब्दों में उपलब्ध है।

सोचने कि बात है कि इतनी महान विद्या ब्राह्मणों के पास कैसे हो सकती थी?

7. छान्दोग्य उपनिषद् 2।13।1 में सामगान के लिये दी गयी उपमा देखिए।

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः
स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीसह शेते स प्रतिहारः
कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति।
तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम्। (छान्दोग्य २।१३।१)

संदेश भेजना हिंकार,वस्त्र हटाकर शरीर का देखना प्रस्ताव, स्त्रियों के साथ सोना उद्गीथ, हर एक स्त्री के साथ सोना प्रतिहार, काम क्रीड़ा में समय व्यतीत करना तथा वीर्यपात करना निधन है। यहाँ वामदेव्य गान, मैथुन के द्वारा समझाया गया है। हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ आदि साम गायन की विधियाँ हैं। सामान्य गायन में जिस प्रकार राग का अलाप, सरगम आदि प्रारम्भ किये जाते हैं, उसी प्रकार साम गायन की विधि में हिंकार, प्रस्ताव आदि होते हैं। उनकी समानता मैथुन, वह भी हर एक स्त्री के साथ, करके पवित्र सामवेद को किस प्रकार कलंकित किया गया है।

इसके आगे फिर कहते हैं कि–

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद । मिथुनीभवति
मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान्
प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या । न कांचन परिहरेत् तत् व्रतम् ।।

जो वामदेव्य गान को मैथुन में ओतप्रोत जानता है, वह मिथुनी (मैथुन में प्रवीण) होता है, इस मैथुन से सन्तानवाला होता है, सारी आयु सुखी रहता है, बहुत दिन जीता है, बड़ा धनी और कीर्तिवाला होता है, किसी स्त्री को न छोड़ना चाहिये, यही व्रत है। (इसका भाष्य

करते हुये शंकराचार्य जी कहते हैं कि, **'न कांचन कांचिदपि स्त्रियं स्वात्मतल्पप्राप्तां न परिहरेस्समागमार्थिनीम्'** अर्थात् समागम चाहने वाली जो अपनी शय्या पर आवे तो ऐसी किसी भी स्त्री को न छोड़े)। (वैदिक सम्पत्ति से उद्धृत)। क्या इससे अधिक निन्दनीय कुछ हो सकता है?

श्री शिव शंकर शर्मा जी ने इस अश्लीलता को छिपाने के लिये शब्दों को घुमाकर इसका बनावटी अर्थ किया है।

8 बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्त में आये अश्लील प्रकरण के कुछ अंश निम्न प्रकार हैं।

प्रजापति ने चाहा कि इस (वीर्य) के लिये प्रतिष्ठा (ठहरने का स्थान) बनाऊँ। उसने स्त्री बनाई, उसको बनाकर उसने मैथुन किया। इसीलिये स्त्री के साथ मैथुन करते हैं। यह श्री है। उसने इस निकले हुये अपने कठोर अंग को बढ़ाया और इसके द्वारा उसमें गर्भ स्थापित किया।। 14 |9 |4 |2

उसकी उपस्थ वेदी है। लोम बर्हि हैं। उसका चमड़ा सोम निचोड़ने का चर्म है। उसके मुष्क (दो अण्डकोश) बीच में जलनेवाली अग्नि हैं। जितना बड़ा वाजपेय यज्ञ में यजमान का लोक है, उतना ही उसका भी लोक है

जो इस रहस्य को समझकर मैथुन करता है और स्त्रियों के सुकृत का हरण करता है। **14 |9 |4 |3**

स्त्रियों कि शोभा बढ़ जाती है जब रजस्वला होने के पश्चात् मैले कपड़े हटाती हैं। अतः मैले कपड़ों के पश्चात् यशवाली स्त्री के समीप जावे। यदि वह उसकी इच्छा पूर्ण न करती हो तो उसको लालच दे। यदि तब भी वह राजी न हो तो लकड़ी या थप्पड़ से मारे और कहे कि बल से मैं तेरा यश छीनता हूँ। इस प्रकार वह यश–शून्य (परास्त) हो जाती है। **शतपथ 14 | 9 |4 |7**

वह जिस स्त्री को चाहे कि वह इसके साथ रमण करें, उसके मुख से मुख मिलाकर उसके उपस्थ छूकर जपे–'तू अंग–अंग से उत्पन्न होता है। तू हृदय से उत्पन्न होता है। तू अंगो का रस है। इस स्त्री को इस प्रकार मद–युक्त करे, जैसे इसका हृदय बींध लिया गया हो'। **शतपथ 14 | 9 |4 |8**

यदि चाहे कि मेरे ऐसा लड़का हो, जो पण्डित हो, कीर्तिवाला हो, सभाओं में उसका मान हो, वह अच्छी वाणी बोलता हो, सब वेदों को जानने वाला हो, पूरी आयु का हो तो माँस–चावल पकवाकर घी मिलाकर खावें

तब ऐसे ही पुत्र को उत्पन्न करने में समर्थ होंगे। मांस चाहे बैल का हो या वृषभ का। **शतपथ 14 ।9 ।8 ।17**

मनुस्मृति में मिलावट–

स्मृतियों में सर्वश्रेष्ठ मनुस्मृति में ही सबसे अधिक प्रक्षिप्त श्लोक हैं। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली द्वारा मनुस्मृति से 170 प्रक्षिप्त मंत्र हटाकर एक विशुद्ध मनुस्स्मृति प्रकाशित की गयी है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है ऐसा करने में कुछ अच्छे मंत्र भी हटा दिये गये, हैं जो उचित नहीं हैं।

वेद ईश्वरीय ज्ञान तथा अपौरुषेय हैं

पुरुष सूक्त में कहा है –

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

ऋग्. 10 ।90 ।9, यज.31 ।7

कृष्ण यजु. 35 ।10, अथर्व. 19 ।6 ।13

(तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत) सभी आहुतियाँ जिसके लिये दी जाती हैं, उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परब्रह्म से (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुये, (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्) उससे अथर्ववेद

उत्पन्न हुआ (यजुः तस्मात् अजायत) तथा उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

इससे स्पष्ट है कि विष्णु पुराण, तृतीय अंश के चतुर्थ अध्याय का यह कथन सर्वथा असत्य है कि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने एक चतुष्पादयुक्त वेद के चार भाग किये थे।

हमारी मान्यता है कि परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा इन चार महर्षियों के हृदय तथा बुद्धि में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्व वेद, का ज्ञान प्रकाशित किया।

यह रहस्य, मनन एवं चिन्तन का विषय है कि इन चार ऋषियों के नाम अग्नि, वायु, आदित्य, अगिंरा हैं और अग्नि, वायु, आदित्य, यही तीन ज्योतियाँ हैं, तथा (अंगिरा– अंगिरस) प्राण का नाम है।

आजकल के कुछ तथा–कथित विद्वान् तो इतने निकृष्ट हैं कि वह वेदों को अपौरुषेय मानने को तैयार ही नहीं हैं। उनको यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि भगवान ने कतिपय श्रेष्ठ महर्षियों के हृदय एवं बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश किया होगा।

यहाँ तक कि उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित संस्कृत साहित्य के इतिहास में यह मूर्खता पूर्ण बात लिखी हुयी है, कि पूर्व काल में जो कवि थे वह ऋषि कहलाये और उनकी जो कवितायें थी वह मंत्र कहलाये।

यह हम लोगों की अपने धर्म में अश्रद्धा, अविश्वास एवं घोर मानसिक पतन का प्रमाण है।

वैदिक संम्पत्ति के लेखक श्री रघुन्दन शर्मा भी संभवतः भगवान् की शक्ति तथा चमत्कार पर विश्वास नहीं करते थे। इसीलिये बृहदारण्यक उपनिषद् (6 |3 |12) की आलोचना करते हुये उन्होंने लिखा है 'क्या सूखा पेड़ हरा हो भी सकता है ?

अस्तु मैं आपको भगवान की शक्ति तथा चमत्कार के विषय में अपने कुछ व्यक्तिगत अनुभवों से अवगत कराना आवश्यक समझता हूँ। वेदों में कहा है–

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः। यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।

अथर्व.4 |30 |3, **ऋग्.10 |125 |5**

(अहं) मैं स्वयं ही (देवानाम् उत मानुषाणाम्) देवों तथा मनुष्यों के लिये (जुष्टम्) हितकारी (इदम् वदामि) यह बात कहती हूँ कि (यं कामये) मैं जिसकी कामना करती हूँ, जिसे अच्छा तथा कृपापात्र समझती हूँ, (तम् उग्रं) उसी को तेजस्वी तथा श्रेष्ठ बनाती हूँ;(तं ब्रह्माणं) उसी को ब्रह्मा अर्थात् वेदों का ज्ञाता, (तम् ऋषिं) उसी को ऋषि (तम् सुमेधाम्) तथा उसी को उत्तम मेधा वाला बनाती हूँ।

इस मंत्र में उल्लिखित सत्य तथा चमत्कार का मेरे द्वारा अपनी आखों देखा तथा अनुभव किया हुआ सत्य वर्णन निम्न प्रकार है–

1. मेरे जन्म स्थान, राजा का रामपुर जिला; एटा में मेरे घर के निकट श्री ठा. हुक्म सिंह जी रहते थे, जो बचपन में मुझे अंग्रेज़ी आदि पढ़ाते थे। उन्हें हम आदर के साथ मास्टर साहब कहते थे। उनके एक सगे भतीजे, जिन्हें हम प्यार से मुन्ना कहकर बुलाते हैं, बिल्कुल पढ़े लिखे नहीं हैं, यहाँ तक कि अपना नाम भी नहीं लिख सकते किन्तु श्री वैष्णव देवी जी की उनके ऊपर अनोखी कृपा थी और देवी जी ने उन्हें यह शक्ति दी थी कि यदि कोई व्यक्ति देवी जी से कोई प्रश्न पूछना चाहता था तो

वह एक कागज़ पर प्रश्न लिखकर उन्हें दे देता था। फिर वह प्रश्न लिखा हुआ कागज़ आटे में लपेटकर प्रश्नकर्ता को ही यह कहकर देते थे कि इसे जाकर गाय को खिला दो। इसके कुछ समय बाद, वही कागज़ देवी जी के लिखित उत्तर के साथ उन्हें प्राप्त हो जाता था।

मेरे बताने पर अनेक I.A.S तथा P.C.S अधिकारियों व अन्य लोगों ने स्वयं इस प्रकार अपने उत्तर प्राप्त किये थे। इसीलिये एक वरिष्ठ I.A.S अधिकारी, जो इस समय भी शासन में उच्च पद पर आसीन हैं, उन्हें अपना गुरू मानते हैं।

2. मेरे स्वर्गीय बड़े पुत्र की पत्नी अमेरिकन हैं। वह जब लखनऊ आयीं, तो मैने श्री मुन्ना से कहा कि इन्हें भी जरा देवी जी की कृपा का चमत्कार दिखाओ। तब उस अमेरिकन बहू ने मुन्ना के कहने के अनुसार अपना प्रश्न लिखा हुआ कागज़ मेरे साथ जाकर गोमती में डाल दिया और घर वापस आ गयी। तब मुन्ना के कहने पर उसने अपनी अटैची खोली और उसमें वही कागज़, जिसे गोमती में डाल दिया गया था, देवी जी के उत्तर सहित मिल गया।

3. एक बार हम लोग बड़ी विपत्ति में फंस गये। मेरे एक अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का अपहरण हो गया था और हम उसे खोजते खोजते परेशान हो गये। तब मुन्ना से सम्पर्क करने के लिये मैंने उक्त I.A.S अधिकारी के पूना स्थित घर पर फोन किया किन्तु वह वहाँ नहीं मिले।

जब मैंने अपनी परेशनी उक्त अधिकारी की धर्म पत्नी को बतायी तो उन्होंने कृपा करके बताया, कि गुरू जी ने मुझे योगिनी जी से सम्पर्क करना सिखा दिया है, मैं आपकी बात योगिनी जी से करवा दूँगीं।

थोड़ी देर बाद ही उनका फोन आया कि योगिनी जी से बात कर लीजिये। योगिनी जी की एक भिन्न प्रकार की आवाज़ फोन पर स्पष्ट आ रही थी। जब मैंने अपना दुःख उन्हें बताया तब योगिनी जी ने कहा, बेटा! तुम परेशान न हो, कल मैं स्वयं जाकर खोजूँगी। अगले दिन ही देवी जी तथा उनकी योगिनी जी की कृपा हुयी और योगिनी जी ने स्वयं जाकर अपहरण कर्ता को हटा दिया और मेरे सबसे अधिक प्रिय अपहृत व्यक्ति को इतनी शक्ति दे दी कि वह स्वयं अपनी साइकिल लगभग 20 किलो मीटर चलाकर घर आ गया। यह है देवी जी की कृपा, उनकी शक्ति और भगवान् का चमत्कार।

4. इस क्रम में अन्तिम उदाहरण इस प्रकार है–

मैनें देवी जी से अपने वेद विद्यालय के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा था और प्रार्थना की थी। मैंने अपने द्वारा लिखे गये प्रश्न में अपने माता–पिता का नाम नहीं लिखा था, फिर भी देवी जी ने कृपा करके, योगिनी जी द्वारा भेजे गये, अपने उत्तर में स्पष्ट लिखा है कि वेद एवं संस्कृत के विद्वान्, सत्यवादी, सदाचारी, गायत्री उपासक, तथा नित्य प्रति अग्नि–होत्र करने वाले मेरे पूज्य पिता **पं. गेंदा लाल** (घर का नाम) और दान पुण्य करने वाली पूज्या **माँ श्रीमती चम्पा देवी दोनों बैकुंठधाम में हैं।** सत्य सदाचार, गायत्री उपासना तथा अग्निहोत्र और दान पुण्य से बैकुंठ धाम प्राप्त किया जा सकता है, इसका यह स्पष्ट प्रमाण है।

देवी जी के इस उत्तर से मुझे कितना आनन्द प्राप्त हुआ, इसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

पाठकों के अवलोकन के लिय मेरे प्रश्न तथा देवी जी के उत्तर की फोटो प्रतिलिपि यहाँ प्रस्तुत की जी रही है।

ॐ

जय वैष्णो देवी

हे माँ जगदम्बे! शतशः प्रणाम।
प्रथम वेद विद्यापीठ के निर्माण के लिये [illegible] आशीर्वाद
निर्देश प्रदान करें तथा उपर सौंप, जो शक्ति
पीठ सुन्दी गन्दी आलसी बकता है से किसी
प्रकार मुझे छुटकारा दिलवाने की कृपा
करें।

जय वैष्णो देवी
कटरा ताराज [illegible]

विद्युत्शेखर द्विवेदी
C-258, [illegible]

8.7.2004

जय माता वैष्णो देवी

प्रिय बेटा विद्युत्शेखर माँ का आशीर्वाद।
तुम्हारी जगह की रजिस्ट्री एक माह के अन्दर हो जायेगी और छः
माह में वेद विद्यापीठ बनकर तैयार हो जायेगा। भागदौड़ काफी करनी पड़ेगी। सौरभ
से दूर रहो, जहाँ भी यह बाहर जाना चाहे जाने दो। घर पर सुख शान्ति रहे।
मेंदालाल और चम्पादेवी दोनों वैकुंठ धाम में हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता में मिलावट

श्रीमद्भगवद् गीता के जो निम्नांकित श्लोक वेद विरुद्ध हैं, वह स्पष्ट रूप से बाद में मिलाये गये हैं क्योंकि **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'** कहने वाले भगवान कृष्ण वेदों का अपमान नहीं कर सकते थे।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।2।41

हे अर्जुन! (इह) इस बुद्धि योग में निश्चयात्मिका बुद्धि केवल एक ही है, जब कि बहुत शाखा वाले अनन्त वेदों से बुद्धि बहुत प्रकार की, बहुत भेदों, तथा अनिश्चितता वाली हो जाती है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।2।42

वेदवाद में लगे हुये अर्थात् वेद में कही हुयी बातों को मानने वाले अज्ञानी लोग पुष्पित पौधों की तरह सुन्दर लगने वाली बनावटी वाणी से कहते हैं, कि इसके अतिरिक्त अर्थात् वेद में बताये गये मार्ग के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

वैदिक ज्ञान के लिये यह 'वेदवाद' शब्द कितना अपमान जनक है। यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वेदों का अध्ययन करने वाले, उनमें कही हुयी सत्य बात का उल्लेख करने वाले अविवेकी हैं। यह वेदों पर सीधा हमला है। उल्लेखनीय है कि यजुर्वेद के 40वें अध्याय के

दूसरे मंत्र में यह अधिकार पूर्वक कहा गया है **'एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे'**। अर्थात् कर्तव्य भाव से काम करने के अलावा जीवन का अन्य कोई मार्ग नहीं हैं, इस प्रकार तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होता। इसी श्रेष्ठ मंत्र की निन्दा इस श्लोक में की गयी है।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।। 2 ।43

विभिन्न कामनायें करने वाले, स्वर्ग प्राप्ति को जीवन का प्रमुख उद्देश्य मानने वाले तथा कर्मों के फल के अनुसार जन्म होने की बाते करने वाले व्यक्ति, भोग तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये यज्ञ आदि विभिन्न क्रियायें करते हैं।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्ययसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। 2 ।44

भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति के कारण जिनका चित्त अपहृत हो गया है, अर्थात् जिनका चित्त सदा भोग प्राप्ति में लगा रहता है, उनके अन्तः करण में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती। तथा वे लोग समाधि अवस्था को प्राप्त

नहीं कर सकते। (शांकर भाष्य में समाधि का अर्थ अन्तः करण किया गया है।)

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।2।45

हे अर्जुन! वेद त्रैगुण्य विषयक हैं अर्थात् तीन गुणों से युक्त संसार का वर्णन करने वाले हैं। तुम निस्त्रैगुण्य, निर्द्वन्द्व अर्थात् सुख–दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित नित्य, सत्वस्थ, होकर योगक्षेम की इच्छा न करने वाले तथा आत्मा का ज्ञान रखने वाले आत्म परायण हो जाओ।

यह श्लोक पूर्ण रूप से गलत तथा वेद विरुद्ध है। क्या वेद में ब्रह्म ज्ञान नहीं है, केवल संसार का ही वर्णन है ? जिन वेदों में सारी ब्रह्म विद्या निहित है, जिनका मुख्य विषय ही ब्रह्म है उन्हें त्रैगुण्य विषयक कहना सबसे बड़ा असत्य है।

वेद के निम्नाकिंत मन्त्र के अनुसार शरीर में जो आत्मा सत्व, रज, तथा तम, इन तीन गुणों से आवृत होकर रहता है, उसको ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।

अथर्व.10 । 8 ।43

स्पष्ट है कि कोई जीवित व्यक्ति इन तीन गुणों से रहित नहीं हो सकता। इसलिये 'निस्त्रैगुण्य होना' शब्द ही गलत हैं। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुये श्री शंकराचार्य जी ने निस्त्रैगुण्य का अर्थ निष्कामी कर दिया, जब कि ब्रह्म प्राप्ति के योग्य समाधिस्थ योगी के अलावा कोई व्यक्ति निष्कामी अर्थात् कामना रहित नहीं हो सकता,जैसा कि मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है।

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।

यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्।।123।।

संसार में इच्छा के बिना किसी कार्य का होना दिखायी नहीं देता। प्राणी जो भी कार्य करता है, वह इच्छा के कारण ही करता है।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। 2 ।46 –

परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर जितना प्रयोजन एक कुएँ से होता है, उतना ही प्रयोजन एक विशेष ज्ञानी ब्राह्मण को समस्त वेदों से होता है, अर्थात् ज्ञानी ब्राह्मण के लिये वेद निरर्थक होते हैं, उनसे उसको कोई अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त नहीं होता, कोई लाभ नहीं होता।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।। 2।53

वेदों से विक्षिप्त हुयी (शांकर भाष्य) तेरी बुद्धि जब समाधि में अचल और स्थिर हो जायेगी तब तुम योग को प्राप्त हो सकोगे। (जिसमें चित्त का समाधान किया जाय वह समाधि है। (शांकर भाष्य)।

स्पष्ट है कि वेदों का इतना अधिक अपमान करने वाले उक्त सातों श्लोक वेद विरोधियों द्वारा जान बूझ कर गीता में मिलाये गये हैं किन्तु हम इस पर कोई ध्यान नहीं देते।

वाल्मीकि रामायण में मिलावट

1. गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित रामायण में यह लिखा गया है कि सैंतिसवे सर्ग के बाद 5 सर्ग प्रक्षिप्त होने के

कारण छोड़ दिये गये हैं। इसी प्रकार उनसठवें सर्ग के बाद तीन सर्ग प्रक्षिप्त बताये गयें हैं। इससे अन्य सर्गों के भी इसी प्रकार प्रक्षिप्त होने की सम्भावना प्रतीत होती है।

रामायण में की गयी मिलावट ने तो हमारे इतिहास तथा संस्कृति को ही कलंकित कर दिया है।

विचार कीजिये कि जिस पत्नी को रावण से छुड़ाने के लिये राम ने लगभग 2000 किलो मीटर की पैदल यात्रा करके समुद्र पार किया और घनघोर युद्ध में रावण को मारा, उसी पतिव्रता सीता के चरित्र पर कुछ नीच व्यक्तियों द्वारा उंगली उठाये जाने की बात सुनकर, उन्हें अकेली वन में छुड़वा दिया जब कि वह गर्भवती थीं और उसके पश्चात् यह भी जानने का प्रयास नहीं किया कि सीता जी और उनकी संन्तान का क्या हुआ? कोई सामान्य व्यक्ति भी ऐसा घृणित कार्य नहीं कर सकता, फिर राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे।

2. इस विषय में रामायण में किया गया वर्णन देखने योग्य है।

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणा।

कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः।।

उत्तर काण्ड।43।1

वहाँ बैठे हुये महाराज श्री राम के पास अनेक प्रकार की कथाएँ कहने में कुशल हास्यविनोद करने वाले सखा सब ओर से आकर बेठे थे। उन सखाओं में एक सखा का नाम भद्र था। उससे राम ने पूछा कि लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं ? इस पर भद्र ने कहा कि लोग आपकी बहुत प्रशंसा करते हैं किन्तु उन्हें एक बात अच्छी नहीं लगती –

हत्वा च रावणं संख्ये सीतामादाय राघवः।

अमर्ष पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत्।। 43।16

युद्धमें रावण को मारकर श्रीरघुनाथ जी सीता को अपने घर ले आये। उनके मन में सीता के चरित्र को लेकर रोष या अमर्ष नहीं हुआ। उनके हृदय में सीता सम्भोग जनित सुख कैसा लगता होगा ? पहले रावण ने बलपूर्वक सीता को गोद में उठाकर उनका अपहरण किया, फिर वह उन्हें लंका में ले गया और वहाँ अपने अन्तःपुरके क्रीड़ा–कानन अशोक वनिकामें रखा। इस प्रकार राक्षसों के वश में होकर वह बहुत दिनों तक रहीं, तो भी श्रीराम उनसे घृणा क्यों नहीं करते ?

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।

यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते।। 43 I19

अब हमें भी अपनी पत्नियों का इस प्रकार का आचरण सहना पड़ेगा क्योंकि जैसा राजा करता है, वैसा ही प्रजा करती है।

यह सुनने पर राम ने सभा को समाप्त कर दिया और अपने भाइयों को बुलाकर कहा –

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः।
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।। 45 I14

नरश्रेष्ठ बन्धुओ! मैं लोकनिन्दा के भयसे अपने प्राणोंको और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ फिर सीताको त्यागना कौन बड़ी बात है।।

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम्।

आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज।। 45 I16

अतः सुमित्राकुमार! कल सबेरे तुम सारथि सुमन्त्रके द्वारा संचालित रथपर आरूढ़ हो सीता को भी उसी पर चढ़ा कर इस राज्य की सीमा के बाहर छोड़ दो।

दूसरे दिन लक्ष्मण राम की आज्ञानुसार सीता जी को मुनियों के आश्रम दिखाने के बहाने ले जाकर राम के राज्य की सीमा के बाहर गंगा जी के उस पार रोता हुआ छोड़कर चले आये।

विचारणीय है कि क्या राम के समान श्रेष्ठ पुरुष कहानियाँ बनाकर सुनाने और हँसी मज़ाक करने वाले तथा कथित मित्रों के कहने पर इतना निकृष्ट एवं अन्यायपूर्ण निर्णय ले सकते थे ? क्या वह कह सकते थे कि जब मैं लोक निन्दा के भय से अपने प्राणों का त्याग कर सकता हूँ ,तब सीता का त्याग करना कौन सी बड़ी बात है ? क्या सीता के जीवन का उनके लिये कोई महत्व नहीं था, जब कि हर कोई सज्जन व्यक्ति यही कहेगा कि अपनी निर्दोष पत्नी का जीवन नष्ट करने की अपेक्षा वह अपना ही प्राण त्याग करना पसन्द करेगा। पति पत्नी का तो धर्म ही एक दूसरे पर प्राण न्योछावर करने का होता है।

क्या हमनें कभी इन प्रश्नो पर विचार किया ?

1. क्या लक्ष्मण जी, जो स्वयं इतने बुद्धिमान तथा वीर थे और जिन्होंने लगभग 14 वर्षों तक सीता जी की वन में

रक्षा की थी, इसका विरोध नहीं कर सकते थे ? उन्होंने इतना बड़ा पाप कैसे किया? उर्मिला ने इसका विरोध क्यों नहीं किया ?

2. क्या महर्षि वसिष्ठ तथा माता कौशिल्या इसका विरोध नहीं कर सकती थीं? क्या राम उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर सकते थे ?

3. क्या लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीनों भाइयों की आत्मा मर गयी थी?

4. राम ने सीता को धोखा क्यों दिया ? उन्होंने सीता जी को यह क्यों नहीं बताया कि वह उन्हें वन में छुड़वा रहे हैं? क्या वह उन्हें जनक जी के यहाँ नहीं भिजवा सकते थे ?

5. क्या महराज जनक को अपनी पुत्री की कोई चिन्ता नहीं थी ? उन्होंने अपनी पुत्री को अपने यहाँ क्यों नहीं बुलवा लिया ?

6. हनुमान जी तो सीता जी को अपनी माँ मानते थे, वह उनकी रक्षा करने के लिये वन में क्यों नहीं चले गये ?

7. शत्रुघ्न ने तो लवणासुर का वध करने के उपरान्त मथुरा से लौटते हुये वाल्मीकि आश्रम में जाकर राम के पुत्रों को देखा था और उसके बाद वह राम से मिलने अयोध्या भी गये थे, फिर भी राम को यह बात पता नहीं चली कि उनके दो पुत्र वाल्मीकि आश्रम में रह रहें हैं ? क्या यह संभव है कि शत्रुघ्न ने इतनी महत्वपूर्ण बात राम को न बतायी हो ?

8. क्या कोई पिता ऐसा हो सकता है जो अपने पुत्रों को देखने और उनके विषय में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास भी न करे?

9. वाल्मीकि जी ने भी भगवान राम को यह सूचना क्यों नहीं दी कि उनके दो पुत्र उनके आश्रम में रह रहे हैं ?

10. जब लव कुश अयोध्या आकर रामायण का गान सबको सुना रहे थे, उस समय भी राम को यह पता नहीं था कि ये दोनों उनके पुत्र हैं। रामायण का गान सुनने के बाद ही उन्हें ज्ञात हुआ कि वे दोनों सीता के पुत्र हैं। क्या कोई इस असत्य को स्वीकार कर सकता है ?

11. क्या यह संभव है कि जिस देश में **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'** कहा जाता हो, वहाँ का

आदर्श पुरुष अपनी निर्दोष गर्भवती तथा पवित्रता पत्नी के साथ घोर अन्याय करके उसे वन में अकेला रोने के लिये छोड़ दे ? क्या पत्नी के रूप में सीता जी का कोई अधिकार नहीं था? क्या ऐसा करना वैदिक धर्म के अनुकूल था?

12. क्या राम इतने अयोग्य राजा थे कि सूचना एकत्र करने के लिये उनके पास दूत नहीं थे? उन्होंने इतनें वर्षो तक सीता और उनकी चिन्ता क्यों नहीं की? क्या उनमें मानवीय संवेदना नहीं थी ? क्या वह निष्ठुर थे ?

यह महत्वपूर्ण है कि विष्णु पुराण में राम के राज्याभिषेक के उपरान्त शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर के वध तक उल्लेख है किन्तु सीता परित्याग का कोई उल्लेख नहीं है।

स्पष्ट है कि यह पूरी कहानी असत्य एवं प्रक्षिप्त है और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम तथा वैदिक धर्म, जिसके राम साक्षात् स्वरूप हैं को कलंकित करने के लिये विधर्मियों द्वारा रामायण में मिलायी गयी है। संभवतः इस मिलावट के आधार पर ही जैन लोग कहते हैं कि लव कुश का पालन पोषण एक जैन राजा के यहाँ हुआ था और लव कुश जैन धर्मावलम्बी थे ?

इसीलिये राम के अनन्य भक्त श्री तुलसी दास जी ने **रामचरित मानस** में इस निन्दनीय असत्य कथा का कोई उल्लेख नहीं किया किन्तु हम हैं कि इसे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर रहे हैं।

वैदिक मन्त्रों के सस्वर पाठ में दोष

शुक्ल यजुर्वेद में रेफ के और ऊष्मवर्णों के साथ संयुक्त होने पर मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण 'ख' के समान होता है परन्तु अन्य वेदों में यह विशुद्ध मूर्धन्य **'ष'** के रूप में ही विद्यमान रहता है, जैसे पुरुष सूक्त के प्रख्यात मंत्र **'सहस्रशीर्षा पुरुषः'** में ऋग्वेदियों का उच्चारण जहाँ 'शीर्षा का' स्पष्टतः मूर्धन्य है, वहीं माध्यन्दिनों द्वारा **'शीरेखा पुरुषः'** उच्चारण किया जाता है।

विचारणीय है कि जब अन्य वेदों में 'ष' का उच्चारण ख की तरह नहीं किया जाता, तो यजुर्वेद में ऐसा किये जाने का क्या औचित्य है ?

स्वामी दयानन्द जी ने पाणिनि शिक्षा के आधार पर लिखी गयी अपनी पुस्तक वर्णोच्चारण–शिक्षा में लिखा है–

"जैसे 'ज्ञा', इसमें ज् + ञ् + आ ये तीन अक्षर मिले हैं। इनका उच्चारण भी जकार ञकार और आकार ही का होना चाहिये। किन्तु ऐसा न हो कि जैसे दाक्षिणात्य लोग, अर्थात् द्रविण, तैलंग, कारणाटक और महाराष्ट्र द्नान, गुजराती लोग ग्यान, और पंच गौड़ न्यान ऐसा अशुद्ध उच्चारण अन्ध–परम्परा से वेदादिशास्त्रोके पाठ में भी करते हैं। ऐसे ही पंच गौड़ प्रायः ष के स्थान में स का, और कोई–कोई ख का, और य के स्थान में ज का उच्चारण करते हैं। वैसे ही बंगाली लोग ष और स के स्थान में भी श का उच्चारण किया करते हैं। यह अन्ध–परम्परा नष्ट होकर शुद्धोच्चारण की परम्परा होनी योग्य है।"

इस समय 'यज्ञ' का उच्चारण यद्न अथवा 'यत्न' के रूप में सिखाया जाता है जबकि 'ज्ञ' में त,द,न का कोई समावेश नहीं है। इसी प्रकार अनेक स्थानों पर याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनुसार 'य' का उच्चारण 'ज' के रूप में सिखाया जा रहा है, जबकि पाणिनि शिक्षा, आपिशल शिक्षा आदि में ऐसा कोई नियम नहीं है।

इस समय वेद पाठ में 'र्' का उच्चारण 'रे' के रूप में सिखाया जाता है; जैसे 'उद्धर्षय'(यजुर्वेद.17।42) का

'उद्धरेषय' तथा पद के प्रारम्भ में आने वाले 'व' का उच्चारण 'व्व' के रूप में सिखाया जाता है।

इसके अतिरिक्त शिक्षकों की उदासीनता के कारण बहुत से बच्चे 'श' को 'स' तथा 'स' को 'श' और 'ब' को 'व' बोलते रहते हैं, जब कि प्राचीन आचार्यों ने इसकी कठोर भर्त्सना की है।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

(महाभाष्य) एवं पाणिनीय शिक्षा

जो मन्त्र स्वर या वर्ण से हीन होता है, वह मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता वह तो वाग्वज्र बनकर यजमान का ही नाश कर देता है।

इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा गया है–

स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृत शकृत।

वेद पाठ सिखाने के लिये जिन पुस्तकों का प्रयोग किया जा रहा है, उनमें बहुत अधिक मुद्रण त्रुटियाँ हैं तथा

उनमें सभी शब्दों को मिलाकर लिखा जाता है, जिसके कारण 'अनुस्वार' के स्थान पर 'न' हो जाता है और विद्यार्थियों को सही शब्दों की जानकारी ही नहीं हो पाती, जबकि मधुर स्वर में अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण एवं पदच्छेद का ज्ञान पाठ करने वाले के छः गुणों में माना जाता है।

यथा सुमत्तनागेन्द्रः पदात्पदं निधापयेत्।
एवं पदं पदाद्यन्तं दर्शनीयं पृथक् पृथक्।।

याज्ञवल्क्य शिक्षा,85

जिस प्रकार मदमस्त हाथी चलते समय पैर को क्रमशः एक एक पद उठाकर रखता है, उसी प्रकार वेदपाठियों को अर्थबोध की दृष्टि से क्रमशः एक पद के बाद दूसरे पद का उच्चारण स्पष्ट करना चाहिये, यथा 'पृथक–पृथक' में देखा जाता है।

बिना स्पष्ट उच्चारण के ऐसा पाठ जिससे अर्थ समझ में न आये निम्न कोटि का माना जाता है।

गीती शीघ्री शिरःकम्पी यथा लिखितपाठकाः।

अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः।।

याज्ञवल्क्य शिक्षा,86 पा.शिक्षा, 1।.32

गा कर पढ़ने वाला, (शीघ्री) द्रुतगति से पढ़ने वाला, शिर–हिला हिला कर पढ़ने वाला, पुस्तक देखकर पढ़ने वाला, अर्थ न समझ कर पढ़ने वाला तथा बहुत धीमी आवाज में पढ़ने वाला ये छः प्रकार के अधम (पाठक) पढ़ने वाले कहे गये हैं।

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमत्वं च षडेते पाठका गुणाः।।

याज्ञवल्क्य शिक्षा,87पा.शिक्षा, 32

स्वर की मधुरता, अक्षरों का पदच्छेद सहित स्पष्ट उच्चारण, अच्छा स्वर तथा धैर्य के साथ लय में पढ़ना ये छः गुण पाठकों के कहे गये है।

आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदस्तु पण्डिताः।
स्त्रियोः मधुरमिछन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः।।

याज्ञवल्क्य शिक्षा,88

आचार्य लोग सम पाठ चाहते हैं, विद्वान लोग पदच्छेद सहित पाठ पसन्द करते है, स्त्रियाँ पाठ की मधुरता चाहती हैं, जब कि अन्य पुरुषों को उच्च स्वर में किया गया पाठ अच्छा लगता है।

यथा वाणी तथा पाणी रिक्तं तु परिवर्जयेत्।। 47

जिस तरह से वाणी का स्वर ऊँचा, तथा नीचा होता है, उसी प्रकार हस्त का संचालन उदात्त तथा अनुदात्त के चिन्हों पर ही होना चाहिये, और जहाँ कोई चिन्ह न हो, वहाँ हस्त संचालन नहीं होना चाहिये।

किन्तु इस समय पाठ करते समय शब्दों का उच्चारण एक समान (सपाट) स्वर में सिखाया जाता है, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के अनुसार नहीं। ऐसा करने से मंत्र के अन्त में जो हलन्त् अक्षर होता है, उसका उच्चारण पूरे अक्षर के रूप में किया जाता है तथा अन्त में आये 'म्' के उच्चारण में एक और अतिरिक्त 'म' मिला दिया जाता है जैसे यजु (23।19) के 'गर्भधम्' के स्थान पर 'गर्भधम्म', जिसके कारण वेद पाठ त्रुटिपूर्ण तथा मधुर होने के स्थान पर कर्कश हो जाता है।

उदात्त के स्थान पर अनुदात्त बोलने से ही उपरोक्त गड़बड़ होती है। यदि उदात्त वर्ण को उदात्त बोला जाय तो ऐसा नहीं होगा। इसलिये महाभाष्य में कहा गया है कि–

उदात्तस्य स्थाने अनुदात्तं ब्रूते खण्डिकोपाध्यायः तस्मै शिष्याय चपेटिकां ददाति –महाभाष्य।

उदात्त के स्थान पर अनुदात्त बोलने पर आचार्य शिष्य को चाँटा मारता है किन्तु आजकल तो गुरु स्वयं गलत सिखाते हैं और मन्त्र में लिखे हुये स्वर का जानबूझ कर गलत उच्चारण करते हैं।

प्रणवं प्राक् प्रयुंजीत व्याहृतिस्तदनन्तरम्।

सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान् समाभरेत्।।

याज्ञवल्क्य.शिक्षा,पूर्वार्ध,22

वेद पाठ का प्रारम्भ ओ३म् भूर्भुवः स्वः तथा सावित्री मन्त्र के उच्चारण के बाद ही किया जाना चाहिये किन्तु आज कल वेद पाठ का प्रारम्भ 'ॐ' के स्थान पर 'हरिः ओम्मा' से करवाया जाता है, जब कि याज्ञवल्क्य शिक्षा में भी केवल 'ओ३म्' के उच्चारण का ही विधान है 'हरिः ओ३म्' का नहीं।

सबसे निन्दनीय बात यह है कि 'ओ३म्' का उच्चारण 'ओम्मा' के रूप में करवाया जाता है। इससे अधिक घृणित बात और क्या हो सकती है?

अस्तु विनम्र अनुरोध है कि मूर्धन्य वैदिक विद्वान् कृपया गम्भीरता पूर्वक विचार करके वर्तमान पाठ विधि में व्याप्त

दोषों का निवारण करें ताकि वेद पाठ को स्वरों के अनुसार सुमधुर एवं आकार्षक बनाया जा सके।

सत्य की उपेक्षा तथा असत्य के प्रति हमारा प्रेम

यजुर्वेद में कहा है –

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।। यजु.1।5

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वालें हैं, (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि मैं व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि) व्रत यह है कि मैं असत्य को छोड़ कर सत्य को प्राप्त होता हूँ।

यह है वैदिक धर्म का सबसे बड़ा व्रत तथा श्रेष्ठ जीवन का आधार किन्तु सत्य से बचने के लिये, उससे दूर रहने के लिये हमने इस पवित्र व्रत को कैसा हास्यास्पद रूप दे दिया है –

हमने सत्य के साथ 'नारायण' शब्द जोड़ दिया तथा व्रत के साथ 'कथा' शब्द जोड़ दिया और यह व्रत बन गया

'सत्यनारायण व्रत कथा' जिसे सुनकर हम समझते हैं कि हमने सत्य के व्रत का पालन कर लिया।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳसत्ये प्रजापतिः।।यजु.19।77

(प्रजापतिः ऋतेन सत्यानृते दृष्ट्वा वि आ अकरोत्) प्रजापति ने सत्य ज्ञान और असत्य के वास्तविक स्वरूप को देखकर उनको अलग अलग किया और (अनृते अश्रद्धां अदधात्) असत्य में अश्रद्धा तथा (सत्ये श्रद्धाम्) सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया।

वेद के उक्त मन्त्र में कितना महत्वपूर्ण मार्ग दर्शन तथा आदेश दिया गया है कि हमें केवल सत्य में श्रद्धा रखनी है ,असत्य में नहीं। यदि हमने इसका पालन किया

होता, तो असत्य तथा दुराचार में आकण्ठ डूबे हमारे समाज तथा देश का इतना पतन न हुआ होता।

किन्तु इसके विपरीत हम असत्य में ही श्रद्धा रखते हैं इसका उदाहरण है, यह श्लोक'–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

आश्चर्य की बात है कि बड़े बड़े विद्वान् इसे गर्व के साथ सुनाते हैं और समझते हैं कि हम कोई बड़े ज्ञान की बात कर रहें हैं, जब कि इससे बड़ी असत्य तथा मूर्खता पूर्ण बात और हो ही नहीं सकती। किसी आर्ष ग्रन्थ में इस प्रकार की कोई बात नहीं लिखी गयी है। भला कोई व्यक्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा परब्रह्म कैसे हो सकता है?

तैत्तिरीय उपनिषद् में यह नहीं कहा गया है कि गुरु भगवान है, बल्कि केवल यह कहा गया है, 'आचार्य देवो भव'। आचार्य को देवता तुल्य समझो।

उल्लेखनीय है कि जहाँ 'आचार्य देवो भव' की शिक्षा दी गयी है, वहीं आचार्य ने अपने शिष्यों को समझाया है कि केवल हमारी अच्छाइयों को स्वीकार करना, बुराइयों को नहीं। भला संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसमें कोई बुराई न हो।

विचारणीय है कि इस असत्य श्लोक ने समाज में कितनी बुरायी फैलायी है? कितने ही मूर्ख लोग ऐसे पाखण्डी गुरुओं के जाल में फँस कर अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। पता नहीं आजकल ऐसे कितने गुरु दुराचार के आरोप में जेल में सड़ रहे हैं।

इस श्लोक के रचयिता के समान मूर्खों का ही उल्लेख कठोपनिषद् के निम्नाकिंत श्लोक में किया गया है–

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः,

स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढाः

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।

मुण्डक उप.1।2।8 कठोपनिषद.1।2।5

अविद्या में स्थित रहते हुये अर्थात् वैदिक ज्ञान से रहित होते हुये भी अपने आप को बुद्धिमान और विद्वान मानने वाले मूर्ख लोग चारों ओर भटकते हुये ठीक उसी प्रकार अज्ञान के अन्धकार में ठोकरें खाते फिरते हैं जैसे अन्धे मनुष्य के द्वारा ले जाये जाने वाले अन्धे।

इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं वेद भाष्याकार उवट तथा महीधर जिन्होंने यजुर्वेद के निम्नाकिंत मन्त्रों का जान बूझ कर गलत एवं अश्लील अर्थ करके वेदों को कलंकित किया है।

अध्याय	मन्त्र सं.
6 के	7 से 22
19 के	31 से 33
21 के	41 से 47 तथा 59,60
23 के	18 से 29
25 के	25 से 27 तथा {32 से 43 तक}
28 के	11,23,46
29 के	23,35

कुछ लोग इतने मूर्ख हैं कि वह सायीं बाबा को सच्चिदानन्द कहते हैं और मन्दिर में उनकी पूजा करते हैं, जब कि सच्चिदानन्द केवल ब्रह्म को कहा जाता है। कोई व्यक्ति चाहे वह कितना महान हो, कितना बड़ा गुरु हो, कितना सिद्ध पुरुष अथवा ज्ञानी हो, सच्चिदानन्द नहीं हो सकता।

वेद में कहा है 'ओ३म् क्रतो स्मर'। हे जीव! ओ३म् का स्मरण करो। इससे स्पष्ट है कि वेदों के अनुसार केवल ओ३म् अर्थात् ब्रह्म की उपासना की जानी चाहिये तथा

ओ३म् का सतत् स्मरण अर्थात् जप किया जाना चाहिये, किसी अन्य देवता अथवा पुरुष की नहीं।

यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि परमात्मा केवल एक है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, सब उसी के नाम हैं। वेद मन्त्रो में उसी को इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, आदि नामों से वर्णित किया जाता है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो

दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वद–

न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

अथर्व.9 ।10 ।28 **ऋग्.1 ।164 ।46**

ईश्वर एक ही है। उसी का विद्वान् लोग बहुत प्रकार से, अनेक नामों से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम तथा मातरिश्वा कहते हैं।

हम वेदों को स्वतः प्रमाण, अपौरुषेय एवं ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि यदि किसी दुष्ट ने वेदों में कहीं कोई असत्य, अनर्गल

धर्म विरुद्ध मंत्र मिला दिया हो, तो उसे तुरन्त हटा दिया जाना चाहिये और असत्य को किसी भी दशा में स्वीकार नहीं करना चाहिये।

असत्य के प्रति हमारा इतना प्रेम है कि हम तरह तरह की असत्य बातें कहकर अपने देवताओं का अपमान करते हैं। उदाहरणार्थ हम कहते हैं कि–

शिव जी धतूरा और भाँग का सेवन करते हैं, सर्पों को गले में धारण करते हैं, भूत, प्रेत तथा पिशाचों के साथ श्मशान में नृत्य करते हैं, होली खेलते हैं आदि और यह कभी नहीं सोचते कि इस प्रकार हम पूज्य भगवान शिव का कितना अपमान कर रहे हैं।

कितना दुखद है कि हमारी अधिकांश मनमानी, तथा उल्टी पुल्टी बातों का प्रारम्भ इस झूठ से होता है कि 'पार्वती जी द्वारा पूछे जाने पर शिव जी ने यह कहा'।

इसी प्रकार विष्णु जी तथा दुर्गा जी दोनों का अपमान विष्णु पुराण के पंचम अंश के प्रथम अध्याय में यह असत्य तथा अनुचित बात लिखकर किया गया है कि विष्णु जी ने अपनी योग माया से कहा कि तुम दुर्गा के रूप में दैत्यों को मारकर पृथ्वी को सुशोभित करोगी और

जो लोग तुम्हारा पूजन 'माँस और मदिरा' की भेंट चढ़ा कर करेंगे, उनकी सबकी कामनायें पूर्ण हो जायेंगी।

दुष्टों ने धर्म ग्रन्थों में इस प्रकार की अनेक घृणित बातें मिला दीं किन्तु हम इन मिलावटी ग्रन्थों को ही सही मानकर पढ़ने लगे। धर्म तथा संस्कृति के प्रति हम लोग पूर्ण रूप से उदासीन है, और कहते हैं – "जैसा लिखा है, लिखा रहने दो, हमसे क्या मतलब"।

वैदिक धर्म का वास्तविक स्वरूप

यह दुर्भाग्य पूर्ण है कि हम विद्यार्थियों को लगभग सात वर्षों तक वेद पाठ करना सिखाते हैं किन्तु एक भी मन्त्र का अर्थ नहीं बताते, जिसके फलस्वरूप उन्हें वैदिक धर्म का कोई ज्ञान ही नहीं हो पाता।

हमारे नवयुवकों को पता ही नहीं है कि वैदिक धर्म की विशेषताओं में सम्मिलित हैं– सत्य, सदाचार, वीरता, तेजस्विता, पराक्रम, दुष्टों के प्रति क्रोध एवं शत्रुओं तथा राक्षसों का नाश। यह समझना महत्वपूर्ण है कि हमारी संस्कृति में दुष्टों पर क्रोध करना और उन्हें नष्ट करना आवश्यक गुण एवं कर्तव्य है।

इसलिये हमारी प्रार्थना है –

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यमयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहोमयि धेहि।।

यजु. 19।9

हे प्रभो ! (तेजः असि तेजः मयि धेहि) आप तेजस्वी हैं, मुझ में तेज को धारण कीजिये, (वीर्य असि वीर्य मयि धेहि) आप पराक्रम से युक्त हैं, मुझ में पराक्रम धारण कीजिये अथवा मुझे पराक्रम दीजिये, (बलं असि बलं मयि धेहि) आप बल से युक्त हैं, मुझे बल दीजिये, (ओजः असि ओजः मयि धेहि) आप ओजस्वी हैं, मुझ में ओज अर्थात् कान्ति को धारण कीजिये, (मन्युः असि मन्युं मयि धेहि) आप दुष्टों पर क्रोध करने वाले हैं, मुझ में उस क्रोध को धारण कीजिये, अर्थात् मुझे भी शत्रु पर क्रोध करने की क्षमता दीजिये, (सहः असि सहः मयि धेहि) आप शक्ति से युक्त हैं, शत्रु का पराभव करने वाले हैं, शत्रु का पराभव करने की वह शक्ति मुझे दीजिये।

वि नं इन्द्र मृधो जहि नीचा यंच्छ पृतन्यतः।
यो अस्माँ अंभिदासत्यधंरं गमया तमंः।।

यजु. ८।४४,१८।७०, साम. क्र.सं. १८६८, ऋग्. १०।१५२।४

(इन्द्र) हे इन्द्र! (नः मृधः वि जहि) हमसे युद्ध करने की इच्छा वाले शत्रुओं का विशेष रूप से नाश कीजिये (पृतन्यतः नीचा यच्छ) तथा सेनाओं से युक्त हमारे शत्रुओं को नीचे गिराइये, उन्हें निकृष्टतम स्थिति में पहुँचाइये। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें नष्ट करने की इच्छा करता है, (अधरम् तमः गमय) उसे नीचे अन्धकार में ले जाइये।

यजुर्वेद में कहा गया है –

रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि।। यजु.6।1

राक्षसों की गर्दन काटता हूँ।

रुद्र का प्रमुख अर्थ ही है दुष्टों पर क्रोध करने वाला और उनको रुलाने वाला। इसलिये रुद्र की स्तुति के प्रथम मन्त्र में कहा गया है–

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः।। यजु.16।1

(नमः ते रुद्र मन्यव) हे रुद्र! आपके क्रोध को नमस्कार है, (उतो त इषवे नमः) आपके वाणों के लिये नमस्कार है (उत ते बाहुभ्याम् नमः) तथा आपकी दोनों भुजाओं को नमस्कार है।

योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु।।
यजु.11।80

जो हमसे शत्रुता करे, हमसे द्वेष करे, हमारी निन्दा करे, और हमको भयभीत करे, उन सबको भस्म कर दो।

देवताओं ने दुर्गा जी से शत्रुओं का नाश किये जाने की ही प्रर्थना की थी।

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।

एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्।।

दुर्गा सप्तशती.11 ।39

हे सर्वेश्वरि! आपका कार्य हमारी समस्त बाधाओं को शान्त करना तथा हमारे शत्रुओं का नाश करना ही है।

राम के गुणों का वर्णन करते हुये वाल्मीकि रामायण में कहा गया है– क्रोध में राम कालाग्नि के समान हैं।

रामचरित मानस में भी कहा गया है–

विनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति।

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।

सुन्दर काण्ड. 57

मनुस्मृति में कहा गया है–

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।। मनु. 8 ।350

आततायी चाहे गुरु, बालक, वृद्ध,ब्राह्मण अथवा विद्वान् कोई भी हो उसे बिना बिचारे ही मृत्यु दण्ड देना चाहिये। तात्पर्य यह है कि आततायी को मारना आवश्यक है, इसमें कोई दोष नहीं है।

मारने के लिये हाथ में शस्त्र लिया हुआ,अग्नि से जलाने वाला, विष देने वाला, धन सम्पत्ति को लूटने वाला, धान्य तथा खेत पर बलपूर्वक अधिकार करने वाला, अपहरण करने वाला, ये छः प्रकार के दुष्ट आततायी कहलाते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि बर्बर विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों के कारण हमारा स्वाभिमान इतना नष्ट हो गया है कि हमें यह भी नहीं पता कि हम हैं कौन? मुसलमानों ने कहा कि तुम हिन्दू हो, तो हम अपने को हिन्दू कहने लगे और उनकी भाषा अरबी, फारसी तथा उर्दू पढ़ने लगे; अंग्रेज़ो ने कहा कि तुम इन्डियन हो और सभ्य बनने के लिये अंग्रेज़ी पढ़ो, तो हम अपने को इन्डियन कहने लगे और अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। हम क्यों

नहीं समझते कि 'हिन्दू' शब्द हमारे किसी धर्म ग्रन्थ में नहीं है, फिर भी हम अपने को आर्य अथवा भारतीय

कहने के बजाय हिन्दू कहकर अपने ऊपर मुसलमानों द्वारा थोपी गयी गुलामी का ठप्पा लगाकर घूम रहें हैं। यह हमारे पतन की पराकाष्ठा है। क्या कोई विश्वास करेगा कि करोड़ों भारतीय अपने लिये सही नाम ही नहीं ढूंढ पा रहें और अपने को हिन्दू कहकर गौरवान्वित अनुभव कर रहें हैं।

इसी प्रकार हमने अपने संविधान में भारत को एक संप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र न लिखकर 'यूनियन ऑफ स्टेट्स' लिखा है, देश का नाम भी भारत के स्थान पर India That is Bharat लिखा है और अपने वैदिक धर्म का उल्लेख तक नहीं किया है जो हमारी गुलामी मानसिकता का परिचायक है।

सामाजिक दुर्दशा

वर्तमान सामाजिक दुर्दशा के लिये हमारे दूषित विचारों के साथ साथ मुख्य रूप से हमारा कानून तथा शासन उत्तरादायी है। हमें विचार करना चाहिये कि–

1. क्या धन अर्जित करने के लिये शराब तथा अन्य मादक पदार्थों, जो सभी बुराइयों की जड़ हैं, को खुले आम बिकवाकर और विभिन्न प्रकार के व्यभिचारों के अड्डों को लाइसेन्स देकर सरकार युवा वर्ग के जीवन तथा पूरे समाज को नष्ट नहीं कर रही है? क्या इस प्रकार वह महिलाओं और छोटी छोटी बच्चियों के साथ होने वाले बलात्कार, उत्पीड़न तथा हत्याओं को बढ़ावा नहीं दे रही है?

2. क्या सरकार को नहीं मालूम कि अश्लील फिल्में, T.V Shows, Internet तथा सोशल–मीडिया, नग्नता, व्यभिचार, दुराचार ,ठगी, आदि अनेक अपराधों, को बढ़ावा दे रहें हैं? इन पर कठोरता पूर्वक नियंत्रण क्यों नहीं किया जा रहा है ?

3. विवाह की पवित्र परम्परा को जानबूझ कर कमज़ोर करते हुये बेशर्मी एवं दुराचार को बढ़ावा देने वाली Live-in Relationship को वैयक्तिक स्वतंत्रता के नाम पर क्यों बढ़ावा दिया जा रहा है?

4. भारतीय मर्यादाओं को पालन करने वाले संभ्रान्त परिवार की लड़कियों को भगा कर ले जाने वाले दुष्टों को न्यायालय द्वारा संरक्षण क्यों दिया जा रहा है और

लड़कियों के माता–पिता को क्यों उपेक्षित तथा अपमानित किया जा रहा है? कैसा दुर्भाग्य है कि माता–पिता के द्वारा विवाह के लिये पुत्रियों के नाम पर

बैंक में जमा धनराशि से, उन्हें भगाकर ले जाने वाले गुण्डे ऐश करतें हैं और माता–पिता असहाय घूमते हैं।

5. स्वतंत्रता के नाम पर पति–पत्नियों को दूसरी स्त्रियों अथवा पुरुषों के साथ दुराचार करने की छूट क्यों दी जा रही है?

आश्चर्य है कि हम अपनी अच्छी परम्पराओं को जान बूझ कर नष्ट करके और विदेशी संस्कृतियों को अपना कर अपने देश को रसातल में ले जा रहे हैं। महिलाओं के सशक्त किये जाने का अर्थ नग्नता, दुराचार और सामाजिक मर्यादाओं को नष्ट करना नहीं हो सकता।

वास्तव में हम लोगों ने अपने को अनेक बन्धनों में जकड़ रखा है। इनमें सबसे बड़ा बन्धन है अंग्रेज़ों द्वारा दिया गया कानून, जिसके अन्दर बिना झूठ बोले कोई मुकदमा जीता नहीं जा सकता। दुष्टों को दण्ड देने के लिये भी झूठे गवाहों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। कोई मैजिस्ट्रेट या जज अपने सामने हुये अपराध के लिये

दण्ड नहीं दे सकता, वह केवल गवाही दे सकता है। हम इस व्यवस्था को क्यों नहीं बदल सकते ? मैजिस्ट्रेट तथा न्यायाधीश को आवश्यकतानुसार स्वयं जाँच करके शीघ्र दण्ड देने का प्रविधान क्यों नहीं कर सकते ?

संविधान में आवश्यक संशोधन तथा न्याय व्यवस्था में आमूल–चूल परिर्वतन करके और न्यायाधीशों की संख्या में आवश्यकतानुसार वृद्धि करके त्वरित न्याय एवं कठोर दण्ड दिया जाना देशहित में परम आवश्यक है।

अपराधों की निरन्तर बढ़ती हुयी संख्या को दृष्टि में रखते हुये यह उचित प्रतीत होता है कि एक निश्चित प्रक्रिया के अनुसार आवश्यक उच्चस्तरीय निष्पक्ष जाँच के उपरान्त सभी हत्यारों, छोटी बच्चियों का अपहरण एवं बलात्कार करने वालों, देशद्रोहियों, आतताइयों तथा समाज के लिये अभिशाप बने हुये गुण्डों को उसी प्रकार गोली मारने का अधिकार पुलिस को मिलना चाहिये, जिस प्रकार आतंकवादियों को गोली मारने का अधिकार सेना एवं पुलिस को प्राप्त है।

वह सरकार ही क्या जो गीता के अनुसार सज्जनों की रक्षा और दुष्टों का सम्पूर्ण नाश न कर सके।

अन्त में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि मेरे प्रिय शिष्य श्री कुलदीप दीक्षित ने अत्यन्त परिश्रम तथा मनोयोग से इस पुस्तिका की कम्प्यूटर टाइपिंग की है, जिसके लिये उसे मेरा प्रेम पूर्ण हार्दिक आशीर्वाद। भगवान से प्रार्थना है कि उसके जीवन को सब प्रकार से सुखी, सफल एवं समृद्ध बनायें।

विधुशेखर त्रिवेदी

—0—